UNIVERSAL
LIBRARY
OU_180334
UNIVERSAL
LIBRARY

GUP—552—7-7-66—10,000

. OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 S61N Accession No. H3959

Author सिंह, लालजी .

Title नदी तटसे . 1963

This book should be returned on or before the date last marked below.

प्रचारक पॉकेट - बुक्स ५६

नदी तट से

लालजी सिंह

नदी तट से

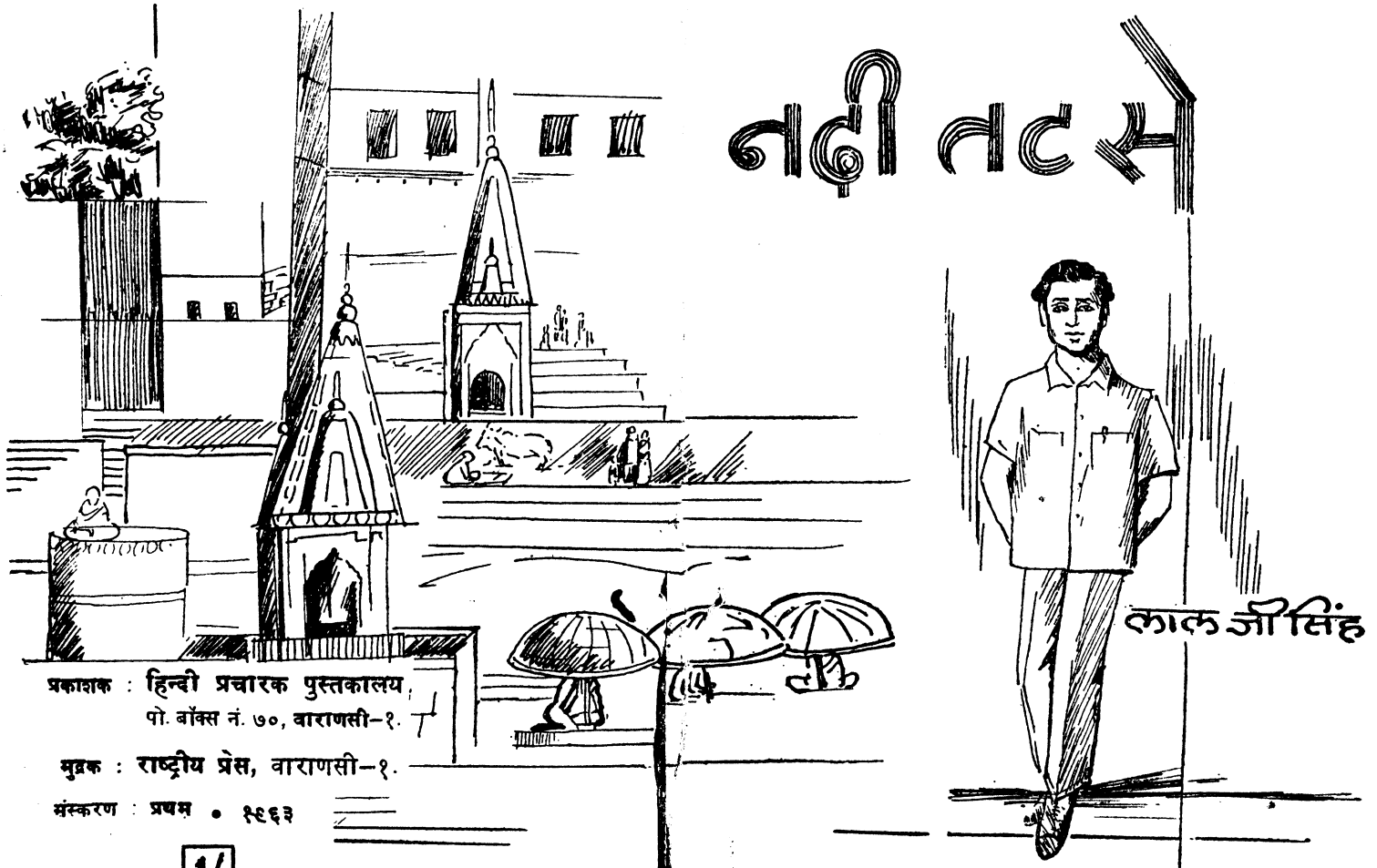

लाल जी सिंह

प्रकाशक : हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,
पो. बॉक्स नं. ७०, वाराणसी–१.

मुद्रक : राष्ट्रीय प्रेस, वाराणसी–१.

संस्करण : प्रथम • १९६३

1/-

56—NADI TAT SE : Lal Ji Singh
(*Novel*)

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

वाराणसी–१.

• नयी पीढ़ी के लेखकों में लेखक, कवि, उपन्यासकार लालजी सिंह ने अपना स्थान बना लिया है। राजनीति से एम. ए. करने के बाद लेखक को सामान्य-विज्ञान विषयक पुस्तक 'भारतीय योजना-पर्यवेक्षण' ने काफी ख्याति अर्जित की है। सम्प्रति आकाशवाणी लखनऊ में सहायक प्रोड्यूसर हैं।

• • प्रेम और मानव-हृदय की भावनाओं के विवेचन पर मनोवैज्ञानिक उपन्यास, जिसमें एक व्यक्ति के माध्यम से सामाजिक ऊहापोह का चित्रण है। हृदय पर पड़नेवाली एक सामाजिक चोट से बिखरनेवाली मानव की भावना, शारीरिक भूख और चेतना पर पड़नेवाले उसके प्रभावों के विश्लेषण के साथ ही सौन्दर्य तथा प्रकृति के चित्रणों को नयी शैली में अभिव्यक्ति हुई है।

१

आपके चेहरे पर विनम्रता तथा श्रद्धा के कितने भाव मुझे देखकर वैसे ही तरंगित हो रहे हैं, जैसे हलकी-हलकी लहरों में तरंग! वैसे मेरा अब तक का जाती अनुभव यही बताता है कि मैं इसे भी सच्चा न मानूँ, मैं मान भी कैसे सकता हूँ! अब तक सच्ची श्रद्धा अपने सम्मुख मैंने नहीं देखी। वैसे अब मैं उसे ढूंढ़ता भी नहीं, क्योंकि समझता हूँ; लोग ऐसे ही हैं। झूठी श्रद्धा, झूठा अनुराग तथा झूठा स्नेह! मेरा अपना पूरा जीवन इसी झूठ की अनुभूति में ही जल और बीत गया।

मैं भी कहाँ पहुँच गया! बहुत कम लोग मुझसे मिलते हैं और जब मिलते हैं तो मुझे लगता है जैसे कोई मेरा अपना घनिष्ट स्वजन मिल गया हो। यह शाम कितनी भली और सुन्दर है और मैं आपसे अपना दुःख सुना रहा हूँ। हो सकता है मेरी इन अभिव्यक्तियों से मनुष्य चिढ़ जाता हो, क्योंकि मैं सर्वदा अपनी ही बात करता हूँ। आज जीवन की इस आपाधापी में किसे वक्त है कि वह दूसरों के दुखों को गौर से सुने? किसी के पास भी इतना वक्त नहीं है और मैं यही गलती सदा सबके साथ करता रहता हूँ। सभी को अपने दुःख से अभिभूत करने का प्रयास व्यर्थ

ही करता रहता हूँ। वैसे सच भी यही है कि इससे मेरा दिल कुछ हल्केपन का अनुभव करता है। आप ही बताइये, जीवन भर के पुँजीभूत दुःख को ढोते-ढोते इतना थका और हारा-सा हो गया हूँ कि इसकी अभिव्यक्ति मेरे हर वाक्य में है। रोकना चाहता हूँ, लेकिन रोक नहीं पाता। कभी-कभी ज़बान नहीं चलती तो मेरी मौन आँखें और मेरे चेहरे पर आनेवाले भाव ही मेरे जीवन की दुःखभरी गाथा सुनाते हैं।

आप कुछ कहना चाहते हैं? अवश्य कहिये, वाह! आप मेरी बातों से नहीं ऊबते। हाँ यह विश्वास मुझे भी था तभी एक झटके से, बिना किसी विराम के मैं आपसे इतना कह गया। आप भी मेरे सहयोगी हैं, भले ही आपकी उम्र बहुत कम है। किंतु देखिये आपका कितना सम्मान लोग करते हैं। वैसे तो कभी-कभी आप भी मेरा मजाक बनाने में नहीं चूकते, किंतु फिर भी आपके दिल में मेरे लिए इतनी जगह तो है कि आप बड़ी सहृदयता, उदारता तथा असीम स्नेह से मेरी बातें सुनते हैं।

क्या कहा आपने? मैं साहित्यकार हूँ? आप मानते होंगे। लेकिन देखिये न! जीवन बीत गया, अब एक कगारे पर खड़ा हूँ, लेकिन क्या है इसमें? साहित्य-रचना से तो बस जीवन बीत जाता है वक्त कट जाता है। वैसे आप जो चाहें सो मानें। देखिये और भी कितने साहित्यकार हैं जिन्हें क्या नहीं प्राप्त है? किन्तु एक मैं हूँ, जिसे जीवन का कोई सुख प्राप्त नहीं है।

आप ठीक ही कहते हैं। जीवन-यापन भर तो साहित्य मुझे दे ही देता है। आलोचनाओं में मेरी बड़ी प्रशंसा रहती है, स्वागत भी होते हैं। लेकिन सबके बीच भी मेरे प्रति लोगों में जो विराग तथा एक व्यंग्य की हल्की मुस्कान रहती है उसे मैं पहिचान लेता हूँ। आदत हो गयी है कि मैं लोगों की आँखों में तैरते भावों से या

चेहरे पर पड़नेवाली सिलवटों से लोगों के अन्तर्मन में छिपे भावों की अभिव्यक्ति को समझ लेता हूँ। मेरी दृष्टि का यह पैनापन भी मुझे पर्याप्त दुःख देता है।

देखिये मैं आप को रोक रक्खे हूँ, आपको कहीं जाना होगा, आपको देर हो रही होगी, लेकिन मैं अपनी ही गाये जा रहा हूँ। इसीलिए न मुझसे लोग नाराज हो जाते हैं। लेकिन मैं मात्र अपनी आदत से ही मजबूर हूँ। अच्छा—तो आपके कहने का अर्थ यह है कि आप कतई ऊब नहीं रहे हैं, साथ ही आप मेरी इन ऊब भरी बातों में दिलचस्पी भी ले रहे हैं। खैर कोई मिला तो, लेकिन यह आपका एहसान नहीं है। अब मैं जीवन में लोगों की एहसान जताने वाली आँखों से ऊब चुका हूँ। अब किसी का भी एहसान मेरा यह कमजोर हृदय नहीं ढो सकता।

देखिये आप भी क्या कह रहे हैं? इस उम्र में मैं शादी कर लूँ? वह तो हो चुकी। इस उम्र में मृत्यु के नजदीक आने पर, मुझसे यह न होगा। खैर, अब मैंने समझा कि आप भी मेरा मजाक उड़ा रहे हैं। वाह! शादी कर लो जी, कहने के बाद जो आपकी आँखों में एक व्यंग्य और शरारत भरी रेखा उठी उसे मैं पहिचान गया। देखिये आप उम्र में बहुत छोटे हैं, इसलिये आपको मुझे यह सब कहने का थोड़ा अधिकार भी है।

आइये, चलें कहीं एकान्त में बैठें, आपने मुझसे मिलकर मेरा मन उद्वेलित कर दिया। बहुत-सी बातें इस समय मेरी छाती में आँधी-सी उठ रही हैं, इन्हें मैं रोक नहीं सकता। आप सुनें, वैसे जब भी आप ऊब जायें, मुझे बता दीजियेगा। मैं शांत हो जाऊँगा, सारा गर्द-गुबार मन का मन में ही रहेगा। चलिए जल्दी निकल चलें, इस भीड़-भाड़ से। देखिये आप चन्द किसी काम से कहीं जाने वाले हों तो जायें। मेरा तो वक्त एकांत में भी बीत जाता है, मैं

अकेले में अपने आप से बातें कर अपने को संतुष्ट कर लेता हूँ। वैसे संतुष्ट न हो पाऊँ तो भी, समय तो बीत ही जाता है।

वाह, आप मेरे साथ चलने को तैयार हैं? देखिये देर हुई तो मैं उसका जिम्मेदार नहीं होऊँगा। क्योंकि मैं तो नदी तट पर काफी देर तक बैठता हूँ। चाहे जिस शहर में रहूँ नदी का तट मुझे मिलना ही चाहिए।

वैसे आप लोग तो रेलों में बैठकर समय गुजारते हैं, मैं भी कभी-कभी उनमें बैठता हूँ, किन्तु मन वहाँ से भागता ही रहता है और वही मुझे हर भीड़-भाड़ तथा लोगों से दूर खींचकर, मुझे ढकेलकर कहीं न कहीं एकांत स्थान में ले जाकर बैठा देता है। कोई साथ नहीं रहता तब भी मेरे जीवन का अतीत मेरा साथ दे देता है। वही मेरा सबसे बड़ा दोस्त है, वही मेरे साहित्य का अजस्र स्रोत है, वही मेरी जीवन पर्यन्त चलनेवाली समस्याओं तथा संघर्षों का सर्जक है।

इसीलिए मैं सोचता था कि आपको एकांत से शायद लगाव न हो? किंतु यदि थोड़ा भी हो तो चलिए। वैसे मैं एकांत में बैठकर सदा अपने अतीत के बारे में खुद से बातें करता रहा हूँ। किन्तु यदि आपको नागवार न गुजरे तो मैं आप से ही कुछ बातें कर लूँगा। हाँ मेरा दिल हल्का होगा, क्योंकि आप मेरे दिल के बोझ को थोड़ा बाँट लेंगे।

आपने अपनी स्वीकृति दे दी, चलिये चला जाय। देखिये धीरे-धीरे मत चलिये मैं शीघ्रता से चलकर वहाँ शांत तट पर पहुँच जाना चाहता हूँ। वहाँ आपके सामने मैं अपने को, अपने अतीत को, अतीत की घटनाओं को सही-सही रखने का प्रयास करूँगा। आप लगता है कुछ सोच रहे हैं! यही न कि आप कहाँ आ फँसे? देखिये, मेरे साथ आपको अधिक वक्त लग सकता है, रात में

आपको बहुत देर से घर लौटना पड़ सकता है; इसे आप अच्छी तरह सोच लीजिये। हाँ वैसे मैं आपको भी देर तक काफी रात गये तक टहलते देखता हूँ।

सीढ़ियों को उतरने में जल्दी न कीजिये, सँभल-सँभल कर चलिये, आप तो न जाने क्यों बहुत गंभीर नजर आते हैं। देखिये यहाँ तट पर कितनी शांति है, हम संघर्षशील जगत को पीछे छोड़ आये हैं। यहाँ बाहरी शांति है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि यहाँ आकर हमारा मानसिक संघर्ष भी समाप्त हो जाय, वह तो सतत चलता ही रहता है। मन को इससे मुक्ति नहीं मिल पाती चाहे वह जहाँ भी रहे।

आपने कुछ कहा? वाह! आप तो काफी सहृदय दीख पड़ते हैं। इन शांत पड़ी नावों की ओर आप संकेत कर रहे हैं। देखिये भी, इन्हें यहाँ किनारे पर भी शांति नहीं मिल रही है, लहरें इन्हें यहाँ भी हिला दे रही हैं। यही जीवन है, हर जगह उसमें एक अशांति आ जाती है। बाहर के या भीतर के झटके जीवन को सदा चलाते रहते हैं।

तो आप चाहते हैं कि मैं अपना अतीत जल्द ही आपके सामने रखना शुरू कर दूँ। वैसे सचमुच मेरा यह निजी विश्वास है कि जीवन को एक खुली पुस्तक की तरह होना चाहिये, उसके हर पहलू लोगों के लिए खुले रहें; ताकि उससे हर आदमी को एक पहिचान मिले, वह लोगों को समझ सके। इसके पतन या उत्थान यदि हों, तो सभी के कारणों पर लोग गौर कर सकें। इसीलिए मैं चाहता हूँ कि आप को अपना अतीत दिखाऊँ, एक चलने वाले चित्र की तरह। विश्वास कीजिये मैं इस उम्र में आपके सामने अपने अतीत का गलत चित्र बिलकुल न रखूँगा, जो सत्य होगा वही आपके सामने आयेगा।

: ० :

२

क्या कहा आपने नारी के सम्बंध में ? ठीक ही कहा आपने। उसकी कमी; उसके प्यार की कमी ने ही मुझे इस रूप में गढ़ा है। यह आपने ठीक ही कहा। वैसे कभी-कभी मुझे भी प्यार मिला है लेकिन वैसे ही, जैसे किसी यात्री को मरुस्थलों की लम्बी यात्रा में कहीं कुछ ताड़-खजूर के पेड़ और कोई छोटा-सा जलाशय मिल जाय। लेकिन मैं अपने को उसी यात्री की तरह मानता हूँ, जिसका पूरा का पूरा जीवन ही मरुस्थलों मे भूल-भटक कर बीत गया हो। वैसे अब मेरी जीवन-यात्रा ही कितनी शेष है !

क्यों, मुझे कभी प्यार मिला था इस पर आपको आश्चर्य हो रहा है ? ठीक भी है आपका सोचना। मेरे इस रूखे-सूखे तन, रूखे-सूखे हृदय वाले व्यक्ति को प्यार का मिलना आश्चर्यजनक है ही। क्यों, आप मुझे रूखे हृदय का व्यक्ति नहीं मानते ? आप न मानें, मैं तो अपने हृदय को रूखा ही मानता हूँ। कभी इसमें भी सरसता थी, किंतु वह सब धीरे-धीरे समय के ताप में झुलसती गयी।

वैसे मैं किसी धनी परिवार से सम्बंधित नहीं था। गाँव की धरती में ही फला और फूला। सम्भवतः इसीलिए मेरे समूचे साहित्य में आपको गाँवों की मिट्टी के लिए असीम प्यार मिलेगा। धीरे-धीरे

यौवन जब उम्र की सीढ़ियाँ पार कर मेरे पास आया तब भी मैं प्रेम-वेग से अनजान था। उस समय मुझे गाँव के लोग बड़ा ही सुरुचिसम्पन्न, प्रतिभाशील और अच्छे भविष्यवाला बालक समझते थे। मेरे बाल-मुख पर लोग किसी भविष्य के महान् पुरुष की छाया देखते थे।

मैं बारहवीं कक्षा में पढ़ता था तभी मुझे पास के ही गाँव में अपने एक नातेदार के यहाँ जाने का मौका मिला। वैसे मैं उनके यहाँ अक्सर आया-जाया करता था, उनके यहाँ जब मैं जाता पूरे परिवार का स्नेह मुझे सुलभ होता था। किंतु एक बार कुछ अजीब-सी घटना घटी। मैं जाकर दरवाजे के बाहर एक काठ की चौकी पर बैठा था, शाम हो रही थी। ढलते सूरज की हल्की लाली दीवारों पर सिमट गयी थी। तभी उनके परिवार की एक बालिका मुझे नाश्ते के लिए बुलाने आयी।

मैंने उसकी ओर मुड़ कर देखा। तभी लगा जैसे उसकी आँखों में कुछ चमक-सा गया हो। फोटो लेते समय कैमरे के बल्ब से जो एक क्षणिक चमक पैदा होती है, वैसी ही एक क्षणिक चमक उसकी आँखों में मैंने देखी। और वही चमक उसकी आँखों में मेरे लिए उसके प्रति एक बड़ा परिवर्तन का कारण बनी। उसे भी न जाने क्या हो गया, कि हमारे साथ ही बैठकर नाश्ता किया। देखिये आप ऊब जायँ तो बता देंगे ? ताकि मैं अपने को रोक सकूँ तथा अपने भावों को बाँध सकूँ।

उस दिन की शाम उम्र के इस अंतिम चरण में भी नहीं भूलती। उस बालिका पर यौवन का रंग चढ़ रहा था, धीरे-धीरे उसके तन में कसाव और तन की रेखाओं में प्रत्यंचा-सा तनाव आ रहा था। उस रात हम दोनों आसपास अलग-अलग खाट पर सोये। उसने अपनी गोद में एक बालक सुला रखा था, लेकिन

लगता था कि वह बिलकुल मेरे पास सोयी हो। मुझे लगा कि किसी अदृश्य शक्ति ने हम दोनों को न जाने किस बंधन में बाँध दिया हो। वैसे वह बंधन बाह्य नहीं केवल आंतरिक था।

हमने बहुत पास रहकर दो दिन गुजारे। जैसे आप पढ़ते या सुनते हैं, वैसे हमारे बीच कोई बात नहीं हुई। हाँ एक प्रकार से हम दोनों की आँखों में ही सारी बातें हुई हों, इसका अनुभव मुझे अवश्य हुआ। हाँ, जब मैं वहाँ से लौटने लगा तो मैंने देखा उसकी आँखों में आँसू थे, चेहरे पर एक विषाद था। उसके दरवाजे के बाहर तक जाते समय मुझे लगा कि मेरी पीठ पर कोई दो आँसू भरी आँखें पछाड़ें खाकर गिर रही होंगी। मेरा हृदय भी कुछ भारी सा हो गया था। लग रहा था जैसे उसकी बड़ी आँखों का एक बड़ा सा बोझ मेरे हृदय पर रख दिया गया हो।

वैसे आपसे सच कहता हूँ; उस आँखों का बोझ आज भी मेरे हृदय पर वैसे ही पड़ा हुआ है, जैसे कि तब पड़ा था। उस समय तो लगा था जैसे उसकी आँखों में से एक चाँदनी की नदी बह निकली हो जिसमें मैं तिरने लगा होऊँ। जीवन पर जितने भी बोझ पड़े उन सबके साथ उन आँखों का बोझ मैं जीवन में ढोता रहा हूँ। लौटते समय की, उन आँसू भरी आँखों की बात ही क्या की जाय? हाँ उन दो एक न गिरने वाली आँसू की बूँदों ने एक अजीब जीवन भर जलने वाली दावाग्नि मेरे दिल में जला दी। वह आग भी क्या थी? कब लगी और न जाने कब तक जलेगी। उसने बुझने का नाम भी नहीं लिया। मैं सच कहता हूँ कि न जाने किस राह मेरे हृदय में भी प्रेम आ ही गया और तब उसने जो जगह बनाई तो छोड़ा ही नहीं।

कुछ दिनो के बाद मैं एक बार पुनः उसके घर गया। मेरे आने की खबर पाते ही वह सामने आ गयी। रूप भी उसने खूब पाया था। दीपक की लौ-सी वह दुबली थी, उसमें भी सोने का-

सा रंग उसे एक अजीब दीप्ति देता था। उफ्, उसकी आँखें! जब उसने मेरी ओर देखा तो मैं उन आँखों में खो-सा गया। आकाश की निःसीमता उसकी आँखों में थी। मैं एक पंछी की तरह उन आँखों के आकाश में खो-सा गया था। उसके चलने-फिरने से लगता था यौवन उसमें अब पूरी तरह कसमसा रहा है। उसका यौवन मेरी आँखों के स्नेह भरे स्पर्श से और भी तरल-सा दीखने लगा।

मुझे स्मरण आ रहा है एक दिन हमने आँखमिचौनी खेली थी। बसंत के दिन थे, नीम की पत्तियाँ जोरों से हवा में इधर-उधर बिखर कर गिर रही थीं, लगता था सभी पेड़ बहुत जल्दी ठूँठे हो जायेंगे। कहीं-कहीं तो हरे चिकने छोटे-छोटे पत्ते भी उग आये थे। हवा के धूल भरे झोंके इधर-उधर उन झरती पत्तियों को लेकर उड़ रहे थे। उसी के बीच हम इधर-उधर दौड़ रहे थे। मैं कभी-कभी उसकी आँखों को मूंदता था। मेरे हाथ दूसरों की आँखें बचा उसके कपोलों और होठों पर पड़ जाते थे। कभी-कभी मैं उसके केशों को भी सहला देता था। केशों को सहलाते समय मुझे लगता था जैसे मैं चाँद पर छाये एक हल्के-से बादल के काले टुकड़े को बड़ी सरलता से सहला रहा होऊँ।

वैसे हमारे खेल में वह दूसरे को आँखें मूंदने नहीं देती थी, किन्तु मुझे आँखों को ही मूंदने का हक उसने नहीं दिया, वरन् कपोलों, होठों और अपने बालों से भी खेलने का हक दिया था। कितना मीठा, कितना मोहक, कितना वशीभूत कर देने वाला वह हक मुझे मिला था। वह एक समर्पण था, जिसकी शुरुआत उस आँखमिचौनी से ही हुई थी।

फिर रात हुई हम अलग-अलग खाटों पर पास ही पास सोये। आपस में घंटों न जाने क्या-क्या बातें हुई, जिनका स्मरण काल के थपेड़ों में पड़कर मैं भूलता रहा, भूलता रहा और आज बिल्कुल

ही भूल गया हूँ। हाँ जहाँ तक मुझे स्मरण आ रहा है, हमने एक दूसरे को न भूलने की कुछ कसमें वगैरह खाई थीं। हमारे हाथ बँधे थे, उसके हाथ मेरे हाथों में थे। लगता था मेरे शरीर में, उन हाथों के स्पर्श से कोई अद्‌भुत झंकार उठ रही हो। कोई अगर-धूप की गंध मेरे मन में उस समय उठ रही थी जिसको बाहर निकलने का मौका न मिलता हो और वह भीतर ही भीतर एक मदिर गंध से मन की दिशाओं को भर रही हो।

दूसरी बार जब मैं वहाँ से चलने लगा तो वह मुझे द्वार तक छोड़ने नहीं आयी। उसकी आँखों में आने वाली आँसुओं की धारा ने उसे किसी कोठरी में जकड़ रक्खा था, क्योंकि संभव था कि लोग उसे कुछ कह न दें। कभी-कभी तो दुनिया को नजरों से आँखों में आनेवाले आँसुओं को भी बचाना पड़ता है। हो सकता है इसी बचाव के कारण वह मुझे विदा देने न आ सकी थी। इस वजह से मेरा रास्ता बोझिल अवश्य हो गया था।

वाह! आप तो मेरी इस कथा को अजीब चुप्पी साधे सुन रहे हैं। लगता है इस एकांत ने आपमें भी एक जड़ता जगा दी है। क्या कहा आपने? मेरी कथा ने आपमें यह जड़ता ला दी है। खूब है, लेकिन इतने गौर से मेरी इन बातों को आज तक किसी ने नहीं सुना, लोगों को वक्त ही नहीं मिलता। अच्छा, तो आप अभी सुनना चाहते हैं? देखिये यदि इस तरह आप मेरी जीवन की ऐसी घटनाओं को सुनना चाहेंगे तो कई रातें लग सकती हैं। खैर, तो आप इसके लिए भी प्रस्तुत हैं? देखिये, यदि आप मेरी इन व्यक्तिगत तथा निरर्थक बातों से ऊब रहे हों तो जाइये, मैं तो इन्हीं स्मृतियों के सहारे जीवित हूँ, अकेले बैठकर सोचता रहूँगा। किनारा तो न कभी मिला, न मिलेगा। किन्तु बहते रहने का भी सुख कम नहीं है, जीवन का निष्कर्ष भी यही है। मेरे लिए और कोई चारा नहीं।

तो आप चाहते हैं कि मैं कहता रहूँ ? कहीं कहते रहने का यह तो अर्थ नहीं कि बकता रहूँ ? ठीक है, यदि यह अर्थ नहीं है तो मैं आगे बढ़ता हूँ। लेकिन देखिये श्यामसुन्दरजी, यदि किसी भी प्रकार आप ऊबने लगें तो मैं बात को यहीं समाप्त कर दूँगा। आगे बढ़ूँ न !

उसके कुछ दिनों बाद मुझे घर पर यह पता लगा कि सावित्री अपनी माँ के साथ एक या दो दिनों के लिए मेरे घर आने वाली है। न जाने क्यों मुझे इस समाचार ने बहुत सुख दिया। वैसे दूसरी बार वहाँ से लौटने के बाद मैं प्रायः एकांत ढूंढ़ने लगा था, अकेले बैठकर मैं उसके रूप की रेखाओं को याद करता रहता था। पढ़ने में भी मन कम लगने लगा था। मुझे कभी-कभी तो ऐसा लगता था कि वह सैकड़ों रूप में मेरे मन में एक साथ जग जाती हो। उसका रूप, उसकी आँसू भरी आँखें सभी सैकड़ों बार आँधी की तरह उठकर मेरे मन के आकाश में छा जाया करती थीं। मैं उस आँधी में पत्ते की तरह अपने सम्पूर्ण अस्तित्त्व को उड़ते हुए अनुभव करता था। मेरी कल्पना उसके उस रूप को नाना रूपों और नाना रंगों में रंग दिया करती थी। एक अजीब काल्पनिक परिवेश में मैं उस सावित्री के रूप को सजाया करता था।

मेरा घर सरयू नदी के पास था, ऊँचे कगारों पर बसा मेरा छोटा-सा गाँव था। जिस दिन वह आनेवाली थी मुझे लगा कि मेरा हृदय ही नहीं पूरा गाँव उसका हार्दिक स्वागत करेगा। गाँव के बाहर पलाशों के वनों में आग-सी लग गयी थी। कनेर और पलाश के फूल भी बसंत के बाद फूलने लगे थे। अमराइयों में आदमी को पागल बना देने वाली गंध रात को छा जाती थी। लगता था यह सब उसी के स्वागत के लिए अपना वेष बदले तैयार हों।

प्रतीक्षा की बेकली क्या होती है इसे तो मैंने बाद में अनेकानेक उपन्यासों और कविताओं में पढ़ा, किन्तु उसी उम्र में मैंने उस बार

इसका अनुभव भी किया था। इधर-उधर टहलता, कभी दरवाजे से झाँकता। सुबह सो कर उठने पर जब कोठरी में सूरज की लाल किरणें दीख पड़ीं तो मैं चिल्ला उठा था। 'सावित्री! वाह तुम इतनी सुबह ही आ गयीं!' किन्तु वह तो आयी ही नहीं थी। दिन ढलते समय वह आयी। गाँव की उस शाम का भी क्या रूप था? आंटे की चक्की से उठनेवाली आवाज़ जीवन के अस्तित्व के ऊपर छायी हुई थी। कुछ पेड़ों से चिड़ियों के परों के फड़कने की आवाज़ भी पारिवारिक अस्तित्व का बोध करा रही थीं।

मेरे घर में चाची आदि से मिलने के बाद वह मुझसे भी मिली। दीये की रोशनी उसके चेहरे पर पड़ी। दिनों और काल की एक लम्बी दौड़ और उनके थपेड़ों में मैं सब भूलता रहा हूँ, किन्तु दीये की रोशनी में खड़ी सावित्री के उस रूप को कहीं भी, कोई भी धूमिल नहीं कर सका। उसकी याद के साथ ही उसका उस समय का रूप दुःखों, कुण्ठाओं तथा पराजयों के आवरण अलग कर मेरे सामने समर्पित रूप में खड़ा हो जाता है, उसकी आँखों में समर्पण का एक अजीब रूप था जिसकी संज्ञा खोजने पर नहीं मिल सकती।

उस रात फिर हम अलग हुए। कुछ खास बातें न हो सकीं। वैसे देहात में एक जवान लड़की से एकांत में बातें करना भी ठीक नहीं था। लेकिन रात में ही कार्य-क्रम तय हो गया कि हम सभी सुबह सरयू में नहाने चलेंगे। हमारे घर से थोड़ी दूर नदी थी वहाँ हम सूर्योदय होते ही पहुँचे। सावित्री में भी संभवतः सौंदर्य-बोध था। सरयू नदी के किनारे पर खड़ी होकर सूरज की किरणों से रँगे हुए कँगारों को वह एक टक देख रही थी। उसने कहा था 'यह सब कितना सुन्दर है!' मैं उसको इस प्रकार भावों में विभोर देख कर हँस पड़ा था।

थोड़ी ही देर बाद हम पानी में उतर गये। मुझे और उसे दोनों को तैरना आता था हम दोनों थोड़ा तैरे भी। किनारे लौटने

के समय तो एक बार मेरे पाँव उसके पाँवों से टकरा गये। हम दोनों लौट कर गले तक पानी में खड़े हो गये। मुझे न जाने क्या शरारत सूझी मैंने उसके पाँवों को अपने पाँवों से पानी के नीचे ही दबा दिया। इतना ही नहीं मैंने उसकी जाँघों में भी अपने जंघे सटा दिये। फिर उसी क्षण मैंने कुछ गलती सी महसूस की और मैं थोड़ी दूर अलग हटकर पानी में खड़ा हो गया। मैंने उसकी ओर मुड़कर देखा, उसकी आँखों से लगा जैसे वह फिर पास बुला रही हों, लेकिन मुझे लगा कि मैं यह कर क्या रहा हूँ ? किन्तु थोड़ी देर तक हम भावावेश में एक दूसरे पर जल उछालते रहे।

देखिये श्यामसुन्दर जी, आपको मैंने उस परिवार से मेरा क्या रिश्ता था, इसे न बताया न बताऊँगा। लेकिन हाँ, यह अवश्य जान लीजिये कि वे हमारे पट्टीदार की ही तरह थे। पीढ़ियों से उसका परिवार हमसे दूर जाकर उस गाँव में रहने लगा था। वैसे हम लोग एक ही परिवार के नहीं थे फिर भी रिश्ते-नाते विचित्र थे। जहाँ कि मेरे और सावित्री के इस प्यार को फलने-फूलने की गुञ्जाइश नहीं थी, किन्तु हम लोग यौवन की हाला के नशे में बह रहे थे। हम एक स्वाभाविक लहरों के हिलोरे थे जो एक दूसरे से मिलते-जुलते बढ़ रहे थे।

दूसरे दिन ही वह जाने वाली थी। मैंने अलग से सावित्री से रुकने को कहा था, किन्तु वह तो माँ के अधीन थी। उसे जाना ही था और वह गयी। उस दिन मैं उसे गाँव के सिवान तक पहुँचाने गया था, मुझे लग रहा था जैसे सारा सिवान हाँफ रहा हो। शाम का वक्त था, गायों-भैंसों के पाँव से उठी सुनहली धूल, ढलते सूर्य की लाल किरणों से, कुछ क्षणों तक दमक कर फिर सड़क पर ही सिमट जाती थी। लौटते हुए चरवाहे बिरहा की धुन ताने हुए थे। सिवान की सीमा तक जाकर मैं लौटा। मुझे लगा कि वह मेरी ओर मुड़ कर देख रही थी।

मेरे मन में एक प्रश्न उस समय अवश्य जगा। सावित्री पहले भी मेरे घर आती थी, किंतु तब मैं उससे तटस्थ सा था। उसके आने और लौट जाने का असर मुझ पर तनिक भी नहीं पड़ता था। मुझे एक बात का स्मरण हो आया कि मेरे घर से सटी एक अमरूद की बगिया थी। वह जब कभी आती थी तो अमरूद के दिनों में हमलोग एक साथ उन अमरूद की डालों पर चढ़कर अमरूद खाते थे, एक दूसरे को थोड़ा परीशान भी करते थे। किंतु कोई गहरा हार्दिक लगाव जैसा अब था वैसा तब न था। एक बार हम अमरूद की पतली डालियों पर इधर-उधर दौड़ रहे थे तभी कुछ कच्चे अमरूदो को उसने तोड़ दिया था, मैंने उसे डाँटा भी था और पेड़ से गिरा भी दिया था।

देखो मित्र! आज जीवन के इन अंतिम दिनों में भी मुझे वह सब किस प्रकार स्मरण है। एक सपने सी वे पुरानी स्मृतियाँ उठती हैं और हृदय के समुद्र में प्रबल आँधी की तरह छा जाती हैं। मुझे अनुभव होता है जैसे मेरे जीवन की नाव अब डूबी, तब डूबी। वे भी क्या दिन थे! कितने उन्मुक्त थे हम! लेकिन एक दूसरे की भावनाएँ और लोगों पर न प्रकट हों इसका हम दोनों ख्याल रखने लगे थे। दोनों पहले जैसे अमरूद के पेड़ पर चढ़कर उछलते-कूदते थे वह सब हमने बन्द कर दिया। ज़बान से कम आँखों के माध्यम से अधिकतर हमारी बातें हो जाती थीं। मुझे लगता था जैसे हम दोनों एक दूसरे की आँखों की डोर पकड़ एक दूसरे के हृदय की अतल गहराइयों में उतर जाते हों। वैसे समुद्री गोताखोरों को तो कहीं सीप, कहीं मोती, कहीं प्रवाल मिलते हैं, किंतु हमें अलग होने पर एक गहरा दर्द, एक निराशा और असमंजस भरी भावनाएँ ही मिला करती थीं।

तभी से मेरा मन कुछ एकांत खोजने लगा। उस दिन उसके

जाने के बाद मैं सिवान से सीधे घर न लौटकर नदी तट की ओर चला गया। वहाँ एकांत में बैठकर शाम तथा रात के धरती पर उतरने के दृश्य में अपने को खोता रहा। लेकिन सभी दृश्यों में सावित्री की आँखें और उसका सौन्दर्य मुझे दीखता रहा। चंचल जल की तरह चमकने वाला उसका रूप, जल के सेवार की तरह उसके बाल, चंचल मछलियों की तरह उसकी बड़ी-बड़ी आँखें। यही सब मुझे घेरे रहे। प्रकृति जरूर थी आँखों के सामने, वहाँ सन्नाटा था, उसका गहन संगीत था जिसकी गंभीरता को पंछियों के बोल और भी गहन कर जाते थे। किंतु इस बाह्य प्रकृति की सुषमा मेरे हृदय को नहीं छू पा रही थी। मेरे मन में तो प्रकृति की सर्वश्रेष्ठ देन,—एक नारी—तथा उसके सभी अंग बसे हुए थे। सामने नदी तट के दूसरे किनारे चाँद उग रहा था। सुर्ख चाँद! जैसे लाल रंग में एक गोला कागज का टुकडा डालकर, फिर उसे निकालकर किसी ने क्षितिज से सटे वसत की ठूँठी डालियों पर लगा दिया हो। धीरे-धीरे चाँद ऊपर आने लगा, तब मुझे लगा वह कागज का टुकड़ा अपनी जगह छोड़ने लगा, गतिमान होने लगा। गति से उसके रंग में फर्क भी आने लगा, उसकी चमक बढ़ने लगी।

तभी दूर से वंशी का स्वर गूँजा। मैं चौंक उठा और फिर घर की ओर मुड़ा। उस दिन देर से घर लौटने के कारण मैंने पहली बार डाँट खाई थी। बहुत डाँटा गया था, लेकिन डाँट का असर मेरे बोझ को हटा न सका। क्योंकि मन पर तो कोई और ही बोझ था, डाँट उसे हटा नहीं सकी। मैं एक सम्मोहन में अपना दिन बिताने लगा था।

× × ×

करीब एक वर्ष बीत गये किन्हीं कारणों से वह मेरे घर न आ सकी थी। कभी-कभी आने जाने वालों से सुन लेता था कि उसके पिता अब उसकी शादी की तलाश में हैं। निश्चित ही, उसकी शादी होनी थी। उसकी उम्र आमतौर से शादी की हो चली थी। मुझे लगा कि अब मुलाकात न होगी। मुझ से शादी की तो कोई संभावना भी न थी, मैं भी प्रयास नहीं कर सकता था, न उसके परिवार वाले ही मुझसे उसकी शादी करने की बात सोच सकते थे। इस बात को सुनने के बाद तो मैं प्रतिदिन नदी-तट पर जाने लगा और एकांत में बैठने लगा।

जाड़ा, गर्मी, बरसात सभी दिनों में, शाम के बाद, नदी का तट ही मेरा साथी था। वर्षा के दिनों में ढहते मिट्टी के कगारों का डरावना स्वर, मैं उस नदी तट पर बैठा सुना करता था। उस प्रांतर में वृक्षों पर पड़ने वाली वर्षा की बूंदों से जो एक भयानक स्वर उठता, वह मेरा साथी था। पहिली बार मैं उस स्वर से डरा था, किन्तु धीरे-धीरे वह स्वर परिचित सा हो गया, फिर परिचय एक दोस्ती में बदल गया। उस नदी के मटमैले जल की ओर बर्षा के दिनों में घंटों तक ताका करता। लेकिन सबके ऊपर मुझे सावित्री का शरीर, अपनी पूर्णता में दीखता था। देर से घर लौटने पर जो एक बार डाँट पड़ी थी, वह बराबर पड़ने लगी। एक वर्ष बाद डाँटने वाले भी खामोश हो गये। सोच लिया लड़का हाथ के बाहर हो गया, बिगड़ गया।

मेरे आंतरिक दुःख से किसी को भी मतलब नहीं था, किसी को मेरे मन पर छाये दर्द से कोई सम्बन्ध नहीं था। शादी की बात ने तो मुझे और भी दुखी बना दिया था। मेरा मन सावित्री में ही एकाग्र रहता था। सुना कि सावित्री का तिलक हो गया, शादी का निमंत्रण भी घर आया। घरवालों ने शादी में मुझे ही भेजना तय किया। मैं तैयार था उस दृश्य को देखने के लिये

भी जिसमें सावित्री मेरी आंखों के सामने ही किसी और को दी जाने वाली थी।

मुझे जहाँ तक स्मरण आ रहा है, वहाँ मैं उससे कुछ क्षणों के लिये ही मिला था। दूल्हन वाले घर में वह बैठी थी। मैं गया तो एक मीठी उमंग से जहाँ दिल के हर कोने को भींगना चाहिये था वहाँ उसकी पलकों में पानी था। निरीहता और परवशता की एक प्रस्तरमूर्ति की तरह वह जड़वत् बैठी थी। कुछ बातें न हो सकीं। हाँ उसकी लाचारी उसके हर संकेत में टपकती थी। लगता था जैसे कोई गलती हो गई हो। और उस गलती के लिए हम दोनों ही समान रूप से जिम्मेवार हों।

बारात आई और वह विदा भी हो गयी। किन्तु मैं उससे दूसरी बार न मिल सका। काम-काज के घर में थोड़ा काम मैंने भी कर दिया, घरेलू धन्धों में व्यस्त हो गया। दूसरी बात संभवतः मन में यह रही हो कि अब मिलकर क्या होगा, पराई स्त्री से नाता ही क्या ? लेकिन एक शाम जीवन में ऐसी आई जिसने हम दोनों के हृदयों को वैसे ही मिला दिया जैसे शाम को आप दूर क्षितिज की ओर देखें तो धरती और आकाश आपस में मिलते से, सटे से दीखते हैं। वैसे वे एक नहीं रहते, यद्यपि हम सभी जानते हैं कि दोनों मिलते कहीं नहीं लेकिन महसूस ऐसा ही होता है।

इस प्रकार उसे बिदाकर एक असन्तोष का समुद्र हृदय में लिये मैं घर लौट आया था। वही दिन में थोड़ा-बहुत पढ़ना, शाम सरयू के किनारे बिता देना। यही दिनचर्या हो गयी थी। एक वर्ष बाद मैंने इन्टर पास किया। उन्हीं दिनों मेरी शादी के लिए लोग आते थे। मैं भी सुनता था, किन्तु न जाने क्यों चाची से कह देता था कि शादी नहीं करूँगा। उनसे कभी-कभी झगड़ा-तकरार

भी हो जाती थी, किन्तु मैं अपनी जगह स्थिर रहता था। मैं अपने इस इरादे में परिवर्तन के लिये कतई तैयार नहीं था।

पहले तो चाची से ही बातें होती थीं। किन्तु एक दिन चाचा जी ने स्वयं मुझसे मेरी शादी की बात चलाई। मैंने साफ़ इन्कार किया, बात बढ़ गई। यहाँ तक बढ़ गई कि मुझे घर छोड़ने को भी बाध्य होना पड़ा। मैं एक रात कुछ पैसे लेकर घर से निकल भागा। कहाँ जाया जाय यह प्रश्न तब मेरे सामने बहुत अहम था। वाराणसी में मेरे गाँव के ही एक परिचित रहते थे, जो मुझे थोड़ा स्नेह भी देते थे, उनका स्मरण हो आया। मैं वाराणसी उनके घर आ डटा। वे एक समाचारपत्र में काम करते थे।

वैसे मैं घर से यहाँ इस शहर में जब से आया तब से आज तक घर नहीं लौटा। जीविकोपार्जन के लिए मेरे उन्हीं दयालु परिचित ने मुझे अपने ही अखबार में प्रूफरीडरी का काम दिला दिया। मैं धीरे-धीरे वह काम सीख गया और अच्छे ढंग से उसे करने भी लगा। इस प्रकार इस नगर में मेरे जीवन का दूसरा भाग शुरू हुआ। दिन भर १० बजे से पाँच बजे तक, तो मैं कार्यालय में रहता। शाम को तबियत उचट जाया करती थी।

मेरे घर के पास एक बगीचा था। पहले मैं वहीं एकान्त में बैठकर शाम बिताया करता था। ताड़ के पत्तों के खड़-खड़ कर हिलने के साथ चाँद के ढक जाने की प्रक्रिया देखता रहता था। रेल के चलने की जब आवाज आती थी तो दिल धक्-धक् करने लगता था। मन में आता था कि जब तक रेल चले, अशांत मन के एकान्त की तलाश में चलता रहूँ। धीरे-धीरे मैं शहर के जीवन का आदी होने लगा। बगीचे का गहन एकान्त जिसके अस्तित्व को केवल ताड़ के वृक्ष ही हिल कर भंग करते थे, उससे ऊबने लगा। वह प्रकृति थी, उसके अनेक रूप थे, लेकिन मुझे रिक्तता

का अनुभव होता और मैं घर लौट जाता।

मैंने कुछ दिनों बाद बगीचे में जाना बन्द कर दिया। धीरे-धीरे कुछ पुस्तकों के पठन-पाठन की आदत लगी। मन कभी-कभी बेचैन हो जाता। उसकी याद मुझे अक्सर आती गोकि उसे भूलने का प्रयास करता। जब भी भूलने का प्रयास करता तो उसका रूप इस तरह मेरे तन-मन को आच्छादित कर देता था, जैसे वसंत के आते ही ठूँठे वृक्ष एक दम फूलों से लद जाते हों। पत्तियो का पता नहीं चलता फूल ही फूल नज़र आते है। वैसे ही मेरे अवसन्न क्षणों में केवल वह रहती। इस तरह धीरे-धीरे पुस्तकों से मेरी दोस्ती बढ़ने लगी।

आप से मैंने बताया ही था कि इन्टर के बाद ही मेरी शिक्षा रुक गयी। घर छोड़ शहर आया; किन्तु पढ़ने का साधन न मिला। जीविका और स्कूल या विश्वविद्यालय की पढ़ाई दोनों को मैं एक साथ चलाने में अपने को असमर्थ पाने लगा। अखबार के कार्यालय से मुझे इतना ही वेतन मिल पाता था कि मेरा जीवन किसी प्रकार चल सके। इसी बीच लाइब्रेरियों से या कुछ पत्रकार बन्धुओं से पुस्तकों को माँग-जाँचकर मैं पढ़ता। धीरे-धीरे मैं काफी पुस्तकें पढ़ गया। कभी-कभी मैं कुछ लिखने की भी सोचता था।

जब भी लिखने बैठता तब वही मेरे सामने आ जाती थी। लगता था उसका रूप ही मुझे घेरे हुए है। पहिले मैंने उस पर कुछ कवितायें लिख डालीं। कुछ मित्रों ने मेरी कविताओं को पसंद किया। वैसे वह कला मेरी न थी। वह तो उसकी थी जिसकी स्मृति ने मेरे तन मन में छा कर मुझसे वह थोड़ा-बहुत लिखवाया था। लिखने की ओर मेरी रुझान बढ़ने लगी. कुछ पत्रों में मेरी कवितायें प्रकाशित होने लगीं, लोग मेरी कविताओं की तारीफ भी करने लगे। आप तो जानते ही हैं कि अब मैं बहुत दिनों से कवि

नहीं हूँ, वरन् एक आलोचक मात्र हूँ और हिन्दी साहित्य के शीर्ष आलोचकों में मेरी गणना होती है।

कुछ दिनों तक कविता लिखने का क्रम चलता रहा। मैं प्रायः घर पर ही रह कर अध्ययन करता। जो समझ में आता वही लिखता। सम्पादकों के बीच में भी मेरी ख्याति होने लगी। लोग मेरी अक्ल, मेरी लेखनी का लोहा मानने लगे। वैसे यह कहना कम से कम मेरे अभिमान को तो प्रकट नहीं करता, लेकिन सचमुच जैसी वह सरल थी वैसी ही सरलता का बोध मैं जो कुछ भी लिख देता था उसमें होता था।

मेरी आय जहाँ की तहाँ थी। इस लेखन कार्य से मेरी आय में फर्क नहीं पड़ा। केवल जी लेने भर जिन चीजों की आवश्यता होती थी वे मेरे पास आ जाती थीं। वैसे यह युग ही ऐसा है कि आदमी को सुख नही है पर वह अपने जीवन को तो किसी प्रकार खे सकता ही है। मेरा जीवन साधारणतया चल रहा था। मेरी और एकान्त दोनों की प्रगाढ़ दोस्ती हो गयी थी। नदी तट पर वैसे काफी समय गवाँ चुका था। अब यही इच्छा होती थी कि केवल मैं और एकान्त वह भी घर का इन्हीं दोनों का साथ रहे।

देखो मित्र रात के ११ बज गये। ये घण्टे नहीं रुक सकते, ये चलते ही रहेंगे। 'काल का चक्र न रोका जा सका है न रोका जा सकता है। मेरे आगे तो और भी उलझनों से भरी जीवन की कहानी है। देखिये इस तट पर कितनी निस्तब्धता है। नावें शान्त हैं, कभी-कभी चिड़ियों के परों के फड़कने से ही कुछ आवाज हो रही है, नदी भी शांत और स्तब्ध है। लगता है मौन होकर यह भी मेरी बातों में दत्तचित्त हो रही है।

तो आप की तबियत उचट नहीं रही है ? आप मेरी इन व्यर्थ की बातों से ऊब नहीं रहे हैं। ठीक है आपको अभी सुनते रहने

की इच्छा है तो मैं अवश्य ही सुनाता रहूँगा। तो आप पूछ रहे हैं कि मेरी उसकी फिर मुलाकात हुई या नहीं ?

अवश्य हुई। दो वर्षों बाद वह अपने घर के रास्ते में वाराणसी रुकी। उसने मेरे घर आदि का पता लगाकर अपने आने की खबर दी। पहले मेरे मन ने रोका, मैंने सोचा वह परायी है। न मिलूँ। मिलने से दिल भारी होगा, बीते दिनों की याद ताजी होगी, इसलिए उससे न मिलूँ। किन्तु कुछ देर बाद मैं स्वयं बरबस उधर खिंचा चला गया, जहाँ वह ठहरी हुई थी।

मेरे सामने पड़ने पर उसकी आँखें कुछ स्निग्ध सी दीख पड़ीं। ममता का जल बाहर हो नहीं पाया लेकिन जैसे झील में चमक होती है वैसी ही चमक उसकी आँखों में थी। असमर्थता तथा बेवसी का एक करुण संगीत जैसे उसकी बड़ी आँखों की झील में मुखर होकर फैल रहा हो ऐसा मुझे लगा। वैसे हम दोनों बहुत पास-पास बैठे, घंटों मौन आँखों से एक दूसरे की ओर देखते रहे। इस बीच जैसे एक साधारण परिचित से भी लोग शिष्टाचार-वश हाल-चाल पूछ लेते हैं, वहीं हमने भी किया। मैंने पूछा, 'कैसी हो ?' उसने कहा—'ठीक हूँ।' लेकिन लगता था जैसे कोई बड़ी गलती उसके जीवन में हो गयी हो और गलती तो हो ही गयी थी जिसका निर्वाह भी उसे करना था।

मेरा भी यौवन था, उसका भी यौवन था। दोनों एक दूसरे को प्यार भी कर चुके थे। दोनों का मन एक दूसरे को समर्पित हो चुका था, लेकिन उस एकान्त में भी हम अलग-अलग थे। जैसे दो अलग सताये हुए प्राणी हों। मुझे स्मरण आ रहा है उसने कहा था, 'तन किसी का हो किन्तु मन तुम्हारा है।' किन्तु पुरुष को तो मन ही नहीं नारी के तन की भी आवश्यकता पड़ती है। लेकिन तन अब मेरी आवश्यकता के लिए नहीं था।

किन्हीं मान्यताओं के कारण वह पराया हो चुका था। हमने कोई खास बातें नहीं कीं।

मैंने पूछा था, "क्यों सुखी तो हो ?"

भरी आँखों से उत्तर मिला था—"जरूर"

"कभी मुझे भी याद करती हो ?"

"भूलूँगी भी तो कैसे ?"

लगता था कि उसकी आँखों में एक व्यथा की आग जल रही हो और उसके प्राणों में उठने वाले ताल और स्वर सभी सो गये हों। वह कुछ परीशान सी भी थी। शाम को हम दोनों इस नदी तट तक टहलने आये। मुझे याद आ रहा है, देखिये वह थोड़ी दूर पर जो पटरा पड़ा हुआ है, उस पर हम घंटों मौन बैठे रहे। उसके पति सरल स्वभाव के थे। उन्हें कुछ लोगों से मिलना था इसलिये उसने मेरा साथ देकर मेरे जीवन के विशाल मरु स्थल में थोड़े जल की वर्षा की और इसी प्रकार दो दिन बीत गये। हम दोनों एक दूसरे से अलग हो गये। मैं उसे स्टेशन छोड़ने नहीं गया। मैं समझता था कि उसकी पलकें जरा भी नम हुईं तो अच्छा न होगा क्योंकि उसे तो दूसरे के साथ ही अपना जीवन बिताना था।

इधर उसके जाने के बाद मेरी उदासी और भी गहन हो गयी। बात तो ऐसी ही थी कि उससे मिलना एक क्षणिक सुख था, लेकिन उस भेंट ने जो निःस्सीम उदासी मुझे दी, वह मेरे हृदय के किसी भी कोने में न अँट सकी। उस उदासी के पर फैलते ही गये। उसकी उड़ान के लिये मेरा हृदय बहुत छोटा पड़ गया। इससे मेरा यही नुकसान हुआ कि मैंने जो घूमना आदि बन्द कर दिया था, वह फिर चालू हो गया, मैं पुनः शहर में निकलने लगा। लिखना-पढ़ना भी थोड़ा बन्द हो गया, इधर-उधर भटकता रहा। हर

मोड़ पर भटकता रहा। वैसे भटकने की वह मेरी व्यक्तिगत प्रक्रिया तो आज भी बन्द नहीं हुई, किन्तु उन दिनों का मेरा भटकना अनोखा था।

उस भटकने में मैंने इस नगर के उन सभी स्थानों से दोस्ती कर ली जो एकान्त थे, जहाँ कम से कम आदमी चाहे-अनचाहे अगर रो सकता था तो हँस भी सकता था। उन स्थानों का बोझिल वातावरण मेरे जीवन में रसने लगा। अपने जीवन की शुरूआत भी क्या थी ? आज भी जीवन के एक छोर पर उन क्षणों की स्मृति के डोर कम से कम मेरे हाथ से नहीं छूट पाये हैं, आज भी उन एकान्त जगहों का मेरे मन पर बड़ा आभार है। उन्हीं दिनों की स्मृति में आज के व्यस्त जीवन में भी मैं कभी-कभी उन स्थानों पर कुछ क्षणों के लिये चला जाता हूँ, जिन्होंने उन दिनों मेरा अभूतपूर्व प्रेम से साथ दिया था, जिन्होंने अपनी गोद में मुझे शायद अपना निजी समझ कर स्थान दिया था। शाम को कार्यालय से लौट घंटों उन स्थानों पर चक्कर काट आया करता था।

आज मैं जहाँ आप के पास बैठा हूँ, यह स्थान भी उन्हीं में से एक है। इस जगह भी मैं बैठता रहा हूँ। और जगहें तो कुछ छूट भी गयीं लेकिन यह जगह नहीं छूट सकी है। क्योंकि गंगा का यह तट मेरे जीवन भर का साथी है। मेरे नाना दुःखों, नाना विषादों तथा अभावों में इसने मेरा बड़ा हार्दिक साथ दिया है। जब भी मैं अपने को थका-हारा महसूस करता हूँ यहीं आ जाता हूँ। और इन लहरों का जो किनारे की बनी पत्थर की सीढ़ियों से टकराकर फेन के रूप में अपने उच्छ्वास व्यक्त करती हैं, मेरा बड़ा पुराना साथ है। वैसे मेरे और भी मित्र थे लेकिन एकान्त स्थानों, नदी-तट, उठती - गिरती लहरें, सूनी नावों ने मेरा साथ बड़ी ईमानदारी से दिया है, इसके लिये मैं उनका बड़ा आभारी हूँ।

वाह आपने यह अच्छी कही ? मुझे इनकी ईमानदारी पर विश्वास है, किन्तु मनुष्य की ईमानदारी पर नहीं। यह प्रश्न भी आपने खूब किया ? देखिये आदमी का ईमान आज खोजने की बात हो गयी है। वैसे ईमान कोई पदार्थ तो है नहीं कि मैं कहूँ कि ईमान यही है, दूसरा कुछ भी ईमान नहीं हो सकता फिर भी ईमानदारी दुर्लभ लगती है। हम सभी ऊँची बातें करने से नहीं चूकते, दूसरे को समझाने से नहीं चूकते, लेकिन, आत्मनिरीक्षण कभी भी नहीं करते ताकि जीवन के मूल्यों के बीच हमें अपनी जगह का भी पता लग जाय। हम सभी को व्यक्तिगत जीवन के मूल्यांकन द्वारा ही दूसरों की समस्याओं में भी रुचि लेनी चाहिए। कोई भी कदापि यह नहीं कह सकता कि दुनियाँ से ईमान उठ गया है, किन्तु यह तो मालूम है कि वह खण्डित अवश्य हो गया है।

जीवन चले, यात्रायें करता रहूँ, न कहीं बैठूँ न विश्राम करूँ।

देखिये रात के सन्नाटे का भी एक स्वर होता है। पीछे से कबूतरों के परों के फड़कने की आवाज आ रही है। बेचारा सन्नाटे की बाँहों में जकड़ा पड़ा है खामोश ! देखिये न कहीं-कहीं लहरों का आवर्त भी दीख रहा है। यह सब जताता है कि सृष्टि की सम्पूर्ण सत्ता अभी भी खामोश नहीं है। जीवन की हलचल सर्वत्र व्याप्त है और वह किसी न किसी रूप में जागती रहती है। हम और आप भी उसी के एक अंग हैं।

हाँ तो मेरा जीवन धीरे-धीरे यायावर के जीवन में परिवर्तित होने लगा। शहर की सीमायें भी मुझे न बाँध सकीं, गाँव तो छूट-सा ही गया था। क्योंकि जब मैं उस स्थान की कल्पना भी करता था तो मन में दर्द भर जाता था। उदासी का आलम मुझे घेर लेता था और फिर वहाँ जाता भी तो क्यों, किसलिये और किसके लिए ? ये प्रश्न मेरे सामने होते।

कभी-कभी जीवन में कोई कमी खटक-सी उठती थी। लगता कि किसी नारी का स्नेह या प्रेम पाना ही होगा अन्यथा जीवन की विषण्णता ही मेरे व्यक्तित्व को खा जायेगी। इसलिये जब टहलता था तो कहीं-कहीं आँखें उलझती थीं। लेकिन उस उलझाव से शांति के स्थान पर अशांति ही मिला करती थी।

ओह! आदमी सीमाओं से कितना जकड़ा हुआ है? इसका ख्याल भी मुझ में जोरों से उठता, संघर्ष की जगह अक्सर मैं अपने को दुर्बल ही पाता। हर जगह जहाँ संघर्ष की आवश्यकता होती थी मैं अपने को अशक्त पाता था। दोस्त! मुझे लगता है कि ये नियम अनादि काल से मनुष्य की लाश पर पाँव धरते चले आ रहे हैं और आज तक इसका कोई हल आदमी ठीक ढंग से निकाल नहीं पाया। मैं आज महसूस करता हूँ जैसे अस्थि-पंजरों का ढोंका मात्र हूँ। जीवन है लेकिन उसका कोई विशेष अस्तित्व नहीं है।

सावित्री पराई है, उससे मुझे जीवन में कोई सहारा नहीं मिलने वाला है। कहा जाता है कि मेरी मोह-लीन न हुई होती तो ईसू पैगम्बर कैसे बनता? लेकिन मोह में लीन होने वाली नारी भी बहुत दुर्लभ है। मैंने सावित्री की ओर से अपने को बिल्कुल अलग कर रक्खा क्योंकि मुझे लगा कि वह हमारा प्यार भी नर कंकाल है। उसके जीव की हत्या हो गई है उस शव और नर-कंकाल से जीवन की आशा रखना, मनुजोचित तो बिलकुल ही नहीं है।

वैसे मैं फिर इधर-उधर भटकता ही रहा, यात्राओं ने थोड़ा संतोष दिया, क्योंकि इससे वक्त किसी न किसी प्रकार बीत ही जाता है। मैंने लिखने-पढ़ने से धीरे-धीरे दोस्ती शुरू कर दी। उस दोस्ती ने बड़े ही ऊँचे मित्र का काम किया। कहा गया है कि

दोस्ती एक मीठा दायित्व है। और इस दायित्व को पढ़ने-लिखने की दोस्ती ने खूब निभाया।

× × ×

मेरा जीवन स्वयं नारी के वास्तविक सुख से वंचित रहा है। नारी संभवतः सृष्टि का सर्वोत्कृष्ट निर्माण है। जैसे प्रकृति के हरे-भरे आँचल के साये में मनुष्य को तृप्ति का अनुभव होता है, उसकी आँखों को उस प्रकृति-सौन्दर्य की महानता को देखने से शांति मिलती है, उसी तरह नारी भी मनुष्य को तृप्ति और उसकी आँखों को शान्ति देती है। यह संसार की वह वस्तु है जिसे हर मनुष्य अपने दुःख तथा सुख दोनों के क्षणों में पास रखना चाहता है।

नारी का सौन्दर्य सचमुच आज इस उम्र में भी मैं जब कभी देखता हूँ तो अभिभूत हो जाता हूँ। लेकिन उस नारी का मुझे पूर्ण समर्पण आज तक न मिल सका। मैंने कभी-कभी घबड़ा कर सौंदर्य को खरीदने की भी कोशिश की। नैतिक मान्यताओं को भुलाकर, नारी की गरिमा, उसकी महिमा सभी को भुलाकर मैंने उसे खरीदने की कोशिश की।

मुझे स्मरण आ रहा है कि एक बार मेरे पास काफी रुपये एकत्र हो गये थे। सोचा कि कहीं बाहर के नगर में टहल आऊँ। यहाँ लगता था कि जीवन घुट-सा रहा है और ऐसा भी था कि जब कभी ट्रेन की आवाज सुनता तो लगता था कि मैं जीवन भर इसी ट्रेन पर चलता रहूँ। यह यात्रा समाप्त हो तो मृत्यु के साथ। किन्तु मनुष्य की अभिलाषाएँ बड़ी निरर्थक होती हैं। होते होंगे वे लोग जिनकी अभिलाषाओं को सार्थकता मिली होगी। किन्तु मैंने जीवन में अपनी इच्छाओं के अनुसार आज तक कुछ नहीं पाया।

हाँ तो मैं कह रहा था कि मैं इस जगह की एकरसता से ऊब रहा था। मेरे दो-एक मित्र कलकत्ते में थे इसलिये मैं वहाँ के लिये रवाना हो गया। वहाँ पहुँचने पर मुझे लगा कि मैं एक जन-समुद्र में पहुँच गया। एक छोटे शहर का रहने वाला व्यक्ति एक दम महानगर में पहुँच गया। शाम को टहलता रहा स्प्लैनेड पर।

मैं था और मेरे साथ नारी के सामीप्य की भूख का साया था। वहाँ बड़े चौरस्ते के बड़े नीले बल्बों की रोशनी लोगों के चेहरों पर पड़ रही थी। चेहरे खुशी से दमकते दीख रहे थे, कुछ लोग उदासी भरे भी दीखे थे। सौंदर्य का दरिया था, खूबसूरत चेहरे जिनकी तलाश थी मुझे वे भी थे। लेकिन मैं वहाँ की भीड़-भाड़ में अपने को सहमा-डरा सा कुछ घबड़ाया-सा पाता था। मेरे मन के भीतर कोई कहता था। 'यह सब तेरे लिये नहीं है। औरों के लिए है।'

मैं इसी उलझन में पड़ा था। वहाँ भी भीड़-भाड़ की सड़क छोड़कर मैंने एक एकान्त रास्ता चुन लिया। आप तो जानते ही हैं कि एकान्त ने मेरा सर्वदा साथ दिया है। वहाँ भी उस एकान्त ने मेरा साथ दिया। धीरे-धीरे मैं यहाँ-वहाँ टहलता हुगली नदी के तट पर पहुँच गया। वहाँ भी नदी-तट ने उस समय मेरा साथ दिया। मुझे लगता था कि मेरा हर क्षण एक बेकली, एक पराजय तथा एक आत्म-घृणा से भरा हुआ है। मुझे लगता था कि उस भीड़-भाड़ में मुझे कोई अपनापा नहीं नजर आता, लगता था वह सब अपरिचित वातावरण है। लेकिन नदी तट और एकांत ये दोनों अपने सगे मीत हैं और दोनों ही बड़े पूर्व परिचित मिल गये।

खैर वहाँ मैं काफी देर तक अकेले बैठा रहा। नदी में चलने-वाले बड़े-बड़े स्टीमरों की आवाज सुनकर अनसुनी कर रहा था

क्योंकि वे जीवन और जगत के अस्तित्व का बोध करा रहे थे। उनके लम्बे, आकाश में तने, ऊँचे मस्तूलों की एक पतली छाया नदी की लहरों पर बिखरी हुई थी। उस पार कई मंजिलों के मकान भी दीख रहे थे। सबका अस्तित्व दीख रहा था। मुझे ऐसा लग रहा था कि अस्तित्व-विहीन प्राणी केवल मैं हूँ।

वैसे आप जानते हैं कि मैं स्वयं नारी का कितना सम्मान करता हूँ। साहित्य में मैंने सर्वदा नारी की विशेषताओं का ही उल्लेख किया है। इस पर भी मैं सदा से जोर देता चला आ रहा हूँ कि नारी के गुणों तथा उसकी महानताओं से परिचित होने के लिये यह आवश्यक है कि आदमी उसकी गलतियों को भूलने का प्रयास करे। किन्तु उस समय मेरे मन में नारी से बदले की भावना जगी। मैं सोचता रहा, सोचता रहा, और मैं इसी निश्चय पर पहुँचा कि उसके सामीप्य और उसके सौन्दर्य को खरीदो। यह बात न जाने क्यों मेरे मन में गूंजी और गूंजती रही। क्योंकि उस समय नारी का प्यार तो मुझे दुर्लभ हो ही गया था।

लेकिन उस तट ने मुझे काफी देर तक उलझाये रक्खा। मैं कभी-कभी लगातार उन मस्तूलों की पतली छाया को लहरों में देख रहा था, स्टीमरों की आवाज सुन रहा था, जीवन की हलचल से अपने मन की रिक्तता को किसी प्रकार भरने की चेष्टा कर रहा था। किन्तु मन लगातार इन सबसे परे कहीं अलग चला जाता था। कभी सावित्री आँखों के सामने आ जाती थी, उसकी आँखों की लाचारी झलक जाती थी और कभी उसके साथ के बीते कुछ क्षण दीखने लगते थे। अक्सर ऐसे एकांत के क्षणों में ऐसा हो ही जाया करता है। पुरानी स्मृतियाँ अक्सर ऐसे एकांत के क्षणों में मुझे काफी सताया करती हैं।

तभी कुछ कदमों की आवाज मैंने सुनी। मैंने देखा एक स्त्री-पुरुष दोनों काफी एक दूसरे के नजदीक चलकर इसी तट पर पहुँचे।

मैंने मुड़कर देखा। मैं समझ गया कि कोई दो दोस्त या पति-पत्नी या एक दूसरे को प्रेम करने वाले अवश्य होंगे। दोनों के हाथ एक दूसरे के हाथों में थे। मैंने सोचा कि एक जीवन यह भी है! नारी की यह सुलभता। एक ओर मैं केवल अन्धकार तथा एकांत से अपने हाथों को फँसाये, क्या खुद को फँसाये, बैठा हुआ हूँ—निरुद्देश्य तथा निरानंद।

कुछ देर यूहीं बैठा रहा, फिर काफी पीने की इच्छा हुई और मैं वहाँ से उठा। धीरे-धीरे चलता फिर स्पलैनेड की सड़क के उस हिस्से पर पहुँच गया जिधर रेस्तरां का जीवन बराबर उल्लास में जागता रहता है। जहाँ बाहर खड़े रहने से ही आर्केस्ट्रा के बजने का स्वर कभी-कभी सुनाई पड़ जाता है। मैं टहलता-टहलता 'क्वालिटी' पहुँच गया, वहाँ अकेले बैठा, पीने के लिए कहवा मँगाई और उस रात सीधे जहाँ टिका था वहीं लौट गया। वैसे तन बुभुक्षित था और मन प्यास से बोझिल। हवा के झोकों से शरीर की शिरा-शिरा चटख जाती थी, फिर भी लाचार और विवश हो घर को लौटा।

वस्तु स्थिति यह थी कि मैं वन्चित था, किन्तु रस का समुद्र सूख गया हो ऐसा नहीं था। लेकिन वह समुद्र मेरे जैसे लोगों के लिये नहीं था; सारा सौंदर्य, और उसका सुख लगता था जैसे मेरे लिये बना ही नहीं है। मेरे मन की उत्तेजना और निराशा दोनों ही लगातार बिजली की कौंध की तरह मन को धक्के दे जाती थी।

मैं प्रायः ऐसी परिस्थितियों की विवेचना गम्भीरतापूर्वक करने लगा हूँ। देखिये आप को लगता है नींद आ रही है। यदि नींद आ रही हो तो हम लोग लौट चलें। जीवन की कुछ ऐसी-वैसी वैयक्तिक घटनायें फिर आपको सुना दूँगा। क्या कहा आपने? नींद आपको बिलकुल ही नहीं आ रही है। तब

तो मुझे लगता है कि कल हम लोग सूर्योदय देखेंगे। वैसे कुछ वर्षों पूर्व मैं लम्बे अरसे तक सूर्योदय नहीं देख पाया था, किन्तु अब तो प्रायः जल्द ही उठ जाता हूँ। खैर आप की तबियत नहीं ऊब रही है। वैसे मुझे तो लग रहा है जैसे अब आप ऊब रहे हैं। बिल्कुल नहीं, तो सुनिये।

दूर मरघट पर जलने वाली लाशों की रोशनी जल पर कितनी लाल होकर फैल रही है। यह लाल रंग कितना गाढ़ा है! मनुष्य का अन्त यहां है। सुन्दर से सुन्दर तन यहीं आते हैं अपने अन्तिम क्षण में! लेकिन फिर भी इस तन पर मनुष्य ने अनेक सामाजिक बन्धन लगा रखे हैं। मुझे तो मानवीय तन पर लगे सारे बन्धन, सारी सीमायें जिनसे मनुष्य का मन और उसका तन घिरा हो, व्यर्थ लगते हैं। लगता है कि कहीं समाज एक बड़ी भूल कर बैठा है और मैं तो अपने इस असंतुष्ट तन और मन को ही अन्त में उस मरघट को सौंप पाऊँगा। क्योंकि चतुर्दिक सुख की तलाश में दौड़ता रहा हूँ, लेकिन सारी दौड़ व्यर्थ रही है। जीवन के एक छोर पर खड़ा होकर ही यह मैं कह पा रहा हूँ, बड़े न्याय के साथ।

हाँ तो मैं उस रोज घर लौटा। दूसरे दिन दिन-भर इधर-उधर भटकता रहा। कहीं सिनेमा गया और कहीं कलकत्ते का बोटानिकल गार्डेन देखने गया। कुछ क्षण मैंने वहां शाम को लेक के किनारे भी बिताये। मेरे साथ मेरे एक और मित्र भी थे जिनके साथ मैं टिका हुआ था। उन्होंने झील के तट से हटकर चौरंगी ही चलने का अनुरोध किया। वैसे मुझे झील के तट पर बैठे रहने में थोड़े संतोष का अनुभव अवश्य हो रहा था लेकिन उनके कई बार आग्रह करने पर मुझे झुकना पड़ा और मैं उनके साथ आकर ट्राम पर संसार हुआ और हम लोग चौरंगी पहुँच गये।

हम लोग भीड़ को चीरते धीरे से वहाँ एक रेस्त्रां में दाखिल हो गये। वैसे मेरा मन तो सड़कों पर यायावरी ही करने का था।

किन्तु मैं अपने मित्र के पथ-निर्देशन में था। वहाँ भीतर जाकर मैंने विचित्र दृश्य देखा। संभवतः वह कोई कलकत्ते का खूबसूरत सा बार था, जहां लोग शराब की बोतलों को टेबुल पर रखे पी तथा खा रहे थे। मैंने वहां जीवन का एक अंग देखा जिससे मैं अपरिचित था। खैर मेरे मित्र ने मुझे आंखों से ही सब समझा दिया क्योंकि वहां पुरुष ही नहीं महिलायें भी काफी संख्या में थीं। सिगरेट के धुँये के छल्ले उड़ रहे थे। तथा शराब की गंध सबके ऊपर छा रही थी। मैंने संभवतः पहिली बार एक स्थान पर बैठकर बहुत-सी महिलाओं को बड़े इतमीनान के साथ सिगरेट पीते देखा था।

मेरे मित्र ने मुझ से आग्रह किया कि कुछ खाओ और पीओ। पीने के नाम पर मैंने आनाकानी की, लेकिन मन के भीतर उत्सुकता थी कि शराब के विषय में काफी साहित्य है। उर्दू साहित्य में इसका बड़ा उल्लेख है इसलिए भीतर से तबियत हो रही थी कि आज पी ही लूं और मैंने थोड़ा 'नहीं' करके फिर स्वीकृति-सूचक रूप में सर हिला दिया। कुछ देर बाद कुछ खाने का सामान और रम के कुछ पेग सामने थे। वैसे मैंने केवल दो पेग ली और मेरे मित्र ने लगभग चार पेग। उसके बाद वहाँ आर्केस्ट्रा की धुन पर अंग्रेजी संगीत का स्वर उठने लगा। मैं और हमारे मित्र दोनों खाने में व्यस्त थे।

इतने में ही एक बड़ी खूबसूरत सी महिला आई। सम्भवतः उसने हम लोगों की सीट पर बैठने का आग्रह मेरे मित्र से किया। मित्र ने इज़ाज़त दे दी और इज़ाज़त देने के साथ ही उसके लिये भी बेयरे को बुलाकर शराब लाने का आदेश दे दिया, उसके लिये भी खाना आया। वैसे मैंने तब तक नारी को वैसे रूप में नहीं देखा था, इसलिये मैं भीतर ही भीतर आश्चर्यचकित और

घबड़ाया-सा था। किन्तु मित्र की स्थिति को देखकर मैं समझ गया कि यहाँ यह सब चलता है। घबड़ाने की कोई आवश्यकता नहीं।

नारी खूबसूरत थी, उसके अंग-प्रत्यंग से संभवतः वासना का ही स्वर उठ रहा था। उसका शरीर इस तरह था जैसे गर्मी के दिनों में गुच्छे के गुच्छे अमलतास गहगह रहते हैं। उसकी पीलिमा में जैसे कनेर के फूलों की लाली समाई थी। उसकी आँखों में जैसे झील का नीला जल छलक रहा हो ऐसा कुछ था। भौंहों, का तनाव कुछ ऐसा था जैसे कामदेव की तनी प्रत्यंचा हो। तीर निकला और मनुष्य मर्माहत हो, उसके सामने लेटा हो। उसके उरोज उसके स्कर्ट के नीचे रह कर भी अपने अलग अस्तित्व की बात कह रहे थे। पूर्ण रूप से सुन्दरी नारी उस दिन एक अजीब रूप से अचानक इतनी पास मिली थी। मेरे मित्र उससे कुछ यूँही हँस-बोल रहे थे।

इधर मैं हत-भ्रम-सा केवल उसकी ओर आँखें बचा-बचा कर देख लिया करता था। उसमें एक चुम्बकीय तत्व था जो मुझे उसकी ओर खींच सा रहा था। वैसे मुझमें तो नारी के लिये अगम और अथाह बुभुक्षा थी ही। कुछ देर बाद मेरे मित्र संभवतः जब कुछ चेते तब उन्होंने उससे मेरा परिचय कराया और हमने परस्पर हाथ मिलाये। किसी नारी से हाथ मिलाने का भी वह मेरा संभवतः पहिला अनुभव था और वह अनुभव बड़ा तीखा था। जैसे बिजली के लगते ही बल्ब जल जाते हैं, वैसे उसके हाथ के मेरे हाथ के लगते ही पूर्ण शरीर जल-सा गया। मैं किसी तरह अपने पर काबू कर पा रहा था। एक तो पहले दिन शराब पी थी और दूसरे उस प्रकार के नये अनुभव थे जिनसे मेरा कभी का साबिका नहीं पड़ा था।

खैर हम लोगों का खाना-पीना भी उस रात देर तक चला। हरे बल्बों की रोशनी में उस का सौंदर्य मुझे और भी चित्ताकर्षक

और मोह ग्रस्त करने वाला लग रहा था। मैंने भी संभवतः उससे कुछ बातें की थीं। क्या बातें वहां बैठकर हुई थीं इनका संभवतः अब मुझे स्मरण नहीं है। वैसे मेरी स्मृति काफी तेज है, किन्तु शायद वह बातें इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं रही होंगी जिन्हें मैं आज तक याद रखता।

पूरा का पूरा वातावरण एक अजीब कोलाहल और रंग में रँगा था। आर्केस्ट्रा का स्वर उस वातावरण और रंग को और भी गहरा कर देता था। कुछ गंभीर तथा कुछ हँसते चेहरे! वहाँ उस रत्नों में कहीं युवतियों का दल बैठा था, कहीं कोई कहीं कोई। इस प्रकार मेरे लिए वह सब एक अजीब सा मजमा था। मेरा दम धीरे-धीरे घुटने सा लगा था क्यों कि यहाँ के जीवन की वास्तविकता और मेरे जीवन की वास्तविकता में कहीं सामंजस्य नहीं था। वैसे मद्य पीने के बाद भी मुझे होश था और मैं हीनता की ग्रंथि के उच्छल थपेड़ों में डूब सा रहा था।

चमकते चेहरे, होठों पर हँसी की फिसलन, यह सब वहाँ थी। पास में भी एक युवती थी, उसका सामीप्य, उसके निःश्वास तथा उसकी मदिरा भरी आँखें यह सब देखने को सुलभ थीं, फिर भी मैं वहाँ बैठा कहीं और डूब गया था। मेरे मन में बहुत सी बातें आनें लगीं। सावित्री के नाना प्रकार के चित्र मेरे मन में घूमने लगे। अपने जीवन की लाचारियों पर भीतर से खुद अट्टहास सा उठने लगा। मुझे काशी का जीवन, जहाँ हम आप आज बैठे हैं, कुरेद सा रहा था, बुला रहा था। मुझे महसूस हो रहा था कि यह सब अगर जीवन के सुख में गिना जाता है तो निश्चित रूप से मेरे लिये नहीं है। मैं कहाँ और यह सब कहाँ! कहाँ जगत और जीवन की आधुनिकताओं से दूर एक बदसूरत आदमी और कहाँ आधुनिकता की वह चरम सीमा! कहीं भी उस परिस्थिति से मेरा सामंजस्य नहीं हो रहा था।

मेरे मित्र उस वातावरण में डूबे हुए थे। मैंने देखा उनके हाथ धीरे-धीरे उस युवती के हाथ पर पहुँच गये थे। वे दोनों परस्पर काफी नजदीक आकर धीमे-धीमे बातें करते और हँसते थे। बीच में खाने के साथ चम्मचों के खटकने की आवाज उठती जाती थी। केवल मुझे छोड़कर वहाँ बैठे प्रायः सभी संभवतः एक रस दीख रहे थे। घड़ी अपनी चाल चलती जा रही थी, रात का वक्त बढ़ता जा रहा था। धीरे-धीरे साढ़े दस बजे, ग्यारह बजे और सवा ग्यारह बजे मेरे मित्र ने चलने का इशारा किया। बिल पे हुआ, हम लोग उठे। मित्र ने सड़क पर आकर टैक्सी बुलायी, महिला भी साथ थी। हम तीनों पीछे वाली सीट पर बैठे। बीच में वह महिला थी।

मदिरा का हल्का नशा मेरे ऊपर भी छा रहा था। मेरी बाँहें, एक कलतक की बिलकुल अपरिचित महिला से सटी हुई थीं। उसके वक्ष भी मेरी ओर झुके हुए थे। वह भी नशे मे थी, उसका अब संभवतः अपने शरीर पर कोई विशेष नियंत्रण नहीं रह गया था। वह कभी एक तरफ होती, कभी मुझसे बिलकुल सट जाती। उस समय उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में जो एक वासना के समुद्र की उत्ताल तरंगें उठ रही थीं उनका ख्याल करके मेरे रोम-रोम में सिहरन सी दौड़ जाती थी। टैक्सी का हर क्षण रोमांच का था, पुलकन और सिहरन का था। लेकिन सबके ऊपर भी मेरे भीतर कुछ ऐसा था जो मुझे उससे अलग हटाये रखने को कहता था। उसका क्या कारण था यह मुझे उस समय बिलकुल स्पष्ट नहीं हो रहा था, लेकिन किसी ओर से मन में कुछ सुख की अनुभूति अवश्य हो रही थी। संभवतः नारी के सामीप्य के कारण।

हम लोग घर पहुँचे। मेरे मित्र ने कहा कि आज यह भी हमारे ही घर रात गुजारेंगी। इसका अर्थ मेरी समझ में पूरी तरह नहीं

आया। किन्तु बाद में मेरे मित्र ने मुझे बताया कि आज हम दोनों इसके सहवास का सुख लूटेंगे। मैं तो आश्चर्यचकित रह गया, दिल धड़क रहा था, विचार उठ रहे थे। लूटना! किसी को लूटना? क्या इसका परिवार नहीं? क्या इस संभ्रांत दीखने वाली युवती की रातों का लेखा-जोखा रखने वाला कोई नहीं? यह सब प्रश्न दिमाग में आते और चले जाते, दिल की धड़कन में खो जाते। मैं उसका होता कौन था, जो उससे पूछता? घर कब पहुंचे ज्ञात नहीं हो सका। होश तब आया जब मेरे मित्र ने कहा कि तुम अपने कमरे में न जाकर मेरे कमरे में जाओ। मैं वहाँ गया, हरे बल्ब की क्षीण रोशनी उस कमरे में जल रही थी, वह युवती एक मसहरी पर प्रायः अधनग्न सी पड़ी हुई थी। मैं अवाक सा रह गया उस मग्न सौंदर्य को देख कर। पूरा खुला बदन बल्ब की रोशनी में चमक रहा था। लगता था संगममंर पर किसी के हल्के लाल रंग का छिड़काव कर दिया हो और वह हरी रोशनी जैसे एक झीनी, हरी पारदर्शक झाग की तरह उस शरीर पर हिल रही हो, पूरे कमरे में तैर रही हो।

मैंने कभी-कभी जंगलों में जलती हुई आग की लहरों को देखा है और उस आग को देर तक एक टक देखता रहा हूँ। आज मुझे पलंग पर लेटी हुई उस युवती को देखकर जंगल की लहराती जलती हुई आग का स्मरण हो आया। लेकिन मुझे अजीब सा लग रहा था। मुझे धीरे-धीरे ऐसा लगने लगा जैसे वह एक मोम की गुड़िया का सौंदर्य हो! जिसकी खरीद संभवतः पैसों से हुई हो। वह मुझे सजीव नहीं लगी, हो सकता है नशे में कुछ और दीखा हो। किंतु कुछ ही देर बाद ऐसा लगा जैसे यह मांस का लोथड़ा हो, जीवन-विहीन! वह बाजार के सामान की एक इकाई हो, जिसे बेचा और खरीदा जाता हो। बाजार में बिकने वाली तरह-तरह की चीजें मेरे दिमाग में चक्कर काटने लगीं। मैंने अपनी आँखें जोरों से

मींच लीं और एक क्षण में कमरे के बाहर वहाँ आ गया जहाँ मेरे मित्र बैठे हुए थे।

मित्र ने पूछा 'लौट क्यों आये ?' मैंने कहा 'कुछ अस्वस्थ्य सा महसूस कर रहा हूँ।' मैं उसके पास ही एक कुर्सी पर बैठ गया, तब तक वह युवती भी आयी। वह मेरी ओर देख कर मुसकाई और उसने मेरे गले में बाहें डाल दीं। मैं भी कुछ मदहोश सा होने लगा था। मैंने अचानक अपने होंठों से उसके होंठों को तेजी से दबा दिया। एक पल के लिये दो शरीर जैसे पास आ गये और फिर पूरा शरीर झन्ना सा गया। मुझे लगा कि मैं अनियंत्रित सा हो रहा हूँ। तब मैं संभला और उस कमरे से भी हटकर मैं सीधे दौड़ कर अपने कमरे में चला गया। वहाँ जाकर मैंने अपने कमरे के दरवाजे की कुंडी चढ़ा ली. विस्तरा लगाया और सोने का प्रयास करने लगा। मेरे मित्र ने दरवाजे पर दस्तक दी, लेकिन मैंने यह कह कर पिंड छुड़ा लिया कि 'मैं अस्वस्थ्य हूँ, सर दर्द कर रहा है।' खैर वह चला गया। इधर मुझे नींद आ ही नहीं रही थी, भीतर से बेचैनी बढ़ रही थी, करवटें बदल रहा था। इसी बीच कुछ कवितायें गुनगुनाने लगा, लेकिन अपने को मैं एक अजीब घेरे में, एक अजीब वातावरण में पाने लगा।। परीशान सा हुआ सोने के लिये आँखें मूंदी पर नींद नही आ रही थी। एक सिगरेट जलाई और कमरे की दीवारों को निरुद्देश्य घूरते हुए उसे पीने लगा।

मुझे आज भी स्मरण आ रहा है कि मेरे मित्र ने चन्द मिनटों बाद ही दरवाजा खटखटाया था। मैंने दरवाजा खोल कर उसकी ओर विनम्र आँखों से देखा था। उसको आँखों में थोड़ा गुस्सा, थोड़ा विस्मय था। उसने कहा, 'एक स्त्री के सामने तुमने मुझे लज्जित किया। वह पूछ रही थी, कि तुम पौरुष विहीन हो क्या ?

मैं लज्जित था, मैंने उत्तर दिया—'नहीं लेकिन पैसों से मुझको नारी का समर्पण नहीं चाहिये।' वैसे मेरे तन, मन सबको नारी के सामीप्य की गहरी आवश्यकता थी लेकिन मैं इस प्रकार अपने को किसी भी नारी को नहीं सौंप सकता था।

मेरा मित्र हँस उठा और वह चला गया, संभवतः उस कमरे में जहाँ वह नारी नग्न लेटी हुई थी। मेरे मित्र का यह विश्वास था कि प्रेम आदि सारी बातें झूठी हैं। नारी जब क्रय की जा सकती है तो उसे खरीदो, उसका सुख भोगो। इतना ही नहीं उसे नारी के चरित्र पर शंका थी, वह किसी भी औरत को जल्दी पवित्र मानने को तैयार नहीं था। वैसे मुझे आज तक चरित्र की पवित्रता क्या है इसका स्पष्ट पता नहीं चला ?

मेरा ख्याल इसके विपरीत था। मैं नारी को विक्रय और क्रय की एक इकाई बिलकुल नहीं मानता था। मैं सर्वदा सोचा करता था कि नारी का समर्पण, हृदय से दिया आत्मसमर्पण पाना ही सुखद है। वैसे उसकी पवित्रता पर भी कई लोगों से बहसें हुई हैं लेकिन सत्य यह है कि नारी सर्वदा पवित्र है। वह सैकड़ों परिस्थितियों के घेरे में घिरी रहती है। साथ किसी के है, उसका मन कह है, पति कोई मिला और दिल कहीं और है। ऐसी परिस्थितियों में उससे हम कितनी आशायें कर सकते हैं ? उसकी लाचारियाँ भी अनेक हैं। मुझको तो न पाप पर विश्वास है, न पुण्य पर। हाँ जिस कार्य से मन को संतोष मिले वही सत्कर्म है। मनकी अन्तः-सलिला को जहाँ कहीं से भी जल मिले उसे बढ़ने देना चाहिये। वायु की तरह मन चंचल रहता है, इधर-उधर भटकता रहता है इसमे स्त्री पुरुष दोनों का क्या दोष है ? यह बात मेरी समझ में आज भी नहीं आती।

वैसे किसी नारी का पूर्ण आत्मसमर्पण पाने के लिए मैं सदा भटकता रहा हूँ। आज जीवन के अन्तिम दिनों की देहली पर

खड़ा होकर भी कह रहा हूँ कि वह समर्पण मुझे तो अप्राप्य ही रहा। लेकिन मैं समर्पण के नाटक से कभी भी प्रभावित नहीं हुआ न उससे मेरा हृदय ही स्पंदित हुआ है। इसलिए अपने मन की आग में अपने को ही जलाता मिटाता रहा हूँ। वैसे कर भी क्या सकता था ?

हाँ तो उस रात वह औरत रात भर मेरे मित्र के साथ रही। सुबह फिर हम सब लोगों ने चाय पी। मेरे मित्र अच्छे व्यापारी थे, वे वहाँ अकेले रहते थे, परिवार कुछ दिनों से साथ न था। उस औरत से कुछ बातें करने का मुझे सुबह मौका मिला। मुझे पता चला कि बचपन में ही उसके पिता का देहान्त हो गया था, माँ जीवित थी। खर्चे बहुत थे, वह करती भी तो क्या ? मैंने उसकी आँखों में वैसे हल्के आँसुओं की एक हल्की सतह देखी थी, लेकिन उस हल्की सतह में ही मुझे सागर की अथाह गहराइयाँ दिखीं। लगता जैसे लाचारियों के बुलबुलों का व्याकुल संसार उसकी आँखों में बिखरा पड़ा हो। मुझे सारी सभ्यता और संस्कृति के भग्नावशेष उन आँखों में छलकते हल्की सतह वाले आँसुओं में दिखे और पता नहीं ऐसी कितनी अनंत आँखें होंगी ? जिनका जीवन स्वयं बाजार की इकाई होगा और जिनके मन की कल्पनाओं का कोई मूल्य नहीं होगा ?

देखो मित्र ! इस कदर खामोश रहोगे तो तुम्हें नींद आ सकती है। वैसे मैं बके जा रहा हूँ, लेकिन आप के भी साहस की मैं ताईद करता हूँ। क्यों घर पर डाँट नहीं पड़ेगी क्या ?

वाह ! आप के घर वाले भी आप से बेहाथ हो चुके हैं, उन्हें आपकी कोई चिन्ता नहीं। क्या कहा आपने ? अरे वे निराश हो गये हैं आप से, ठीक मेरी तरह के हो भाई ? ठीक ही है, कुछ दुःख, कुछ मन की स्थितियाँ ऐसी होती हैं जो बहुतों में पाई जाती हैं। जिनमें

सार्वदेशिकता पायी जाती है। तो आप मेरी कथा से कुछ अपने को भी हल्का पाते हैं ? क्यों बड़ी रुचि है, इन घटनाओं में ? वैसे ये घटनायें ऐसी नहीं हैं जिनका मैं आप से आज उल्लेख करता, लेकिन न जाने क्यों मैं आज ऐसे जीवन के पृष्ठों को उलट रहा हूँ, जिनका दूसरों के लिय संभवतः कोई महत्व नहीं है।

हाँ मैं कलकत्ते कई दिन और रहा, लेकिन स्प्लेनेड पर अकेले टहलता और घंटों हुगली के तट पर बैठकर ही वक्त काटता रहता। अक्सर दिमाग में कोई औरत आती तो सावित्री और कोई नहीं, उससे उस समय मेरा सम्बन्ध नहीं रह गया था। उसी की अनेक कल्पनाओं में रात आ जाती और मैं घर भी अन्धकार में लौटता। लगता कि बीमार हो गया हूँ।

हाँ मुझे एक घटना का स्मरण हो आया। मैं एक बार सावित्री के यहाँ से निकला था। वह दरवाजे तक मुझे पहुँचाने आई थी। उसने उस अन्धकार में टार्च की रोशनी दिखाई थी। मुझे लगा जैसे उस टार्च की रोशनी से प्रकाशित उज्वल प्रकाश उसका हृदय हो, जिसकी इच्छा हो कि मुझे उचित मार्ग मिले, मुझे उजाला मिले। मैंने उस समय राह पर बिछती उस ज्योति की बन्दना की थी।

कलकत्ते की उस अँधेरी गलियों में अक्सर मुझे टार्च की उस रोशनी की याद आ जाया करती थी और मैं बहुत सधे कदमों से अपनी राह चला करता था। वैसे मेरे कदमों में बड़ी शिथिलता रहती थी, क्योंकि हर शाम निरुद्देश्य भटकने में ही बीत जाती थी। जीवन के अमूल्य क्षण आते थे और व्यर्थ से अपनी राह चले जाते थे। मुझ पर काल देव के अनवरत चलने वाले रथ का जैसे कोई असर ही न हो, लेकिन फिर भी मैं अपने को जीवन की तलाश में ही समझता था। सोचता था संभवतः कहीं कोई मिल ही जाय ! जिसमें सावित्री जैसी ममता, और अपनत्व हो; जिसके

आँचल के साये में कभी-कभी थका हारा होने के बाद थोड़ी पहना पा सकूँ। इसी तलाश में निरन्तर मैं भटकता रहा।

दो एक दिन यूँही मेरा वक्त कलकत्ते में बीता और उसके बाद मैं पुनः बनारस लौट आया, मन से उतना ही रिक्त जितना रिक्त मैं यहाँ था। रिक्तता किसी भी प्रकार नहीं भरी जा सकी थी। अकेले मन में केवल कुछ उदास झंकार उठती थी और वह उसी तरह सो जाती थी जैसे देहातों में शाम को गायों बैलों के गिरोहों के लौटने से एक हल्की धूल उड़ती है और पुनः वह धूल पगडंडियों या देहाती रास्तों में सिमट जाती है। ट्रेन मंथर गति से बड़े-बड़े स्टेशनों पर रुकती चली जा रही थी। उनसे एक ताल से बँधा स्वर निकलता था, पौरुष-विहीन हो क्या ? पौरुष विहीन ! पौरुष-विहीन !

मैं शाम को खाली मन होकर बनारस पहुँचा। एकान्त में जाकर बैठ गया। शाम को एक नीले रंग का आर्द्र तारा आकाश के एक कोने में दीख रहा था, जैसे वह पलक मार कर मेरी लाचारी पर मुस्कुरा रहा हो। मेरे श्वास-प्रति श्वास में पराजय की विकलता को कोई भी भाँप सकता था, यदि वह पास होता। उस शाम को मुझे सावित्री की असह्य याद झकझोर सी रही थी। मेरी श्वास से उसके लिए आशीर्वाद ही प्रकंपित था। मेरे जीवन का हर क्षण ऐसी ही विकलता और लाचारी के बोझ से दबा था। कहीं कोई अपना नहीं, न परिवार का न कोई और।

देखिये यदि आपकी राय मेरे जीवन की कुछ घटनाओं को सुनने की है और सुनना चाहते हों तो अब इस स्थान से उठा जाय, किनारे-किनारे ही टहला जाय। मैंने प्रायः जीवन की अनेक रातें टहलते ही गुजारी हैं, टहलते और सोचते, आज अन्तर इतना ही है कि हम दो हैं। वैसे आपको पढ़ाने जाना है, क्या

वहाँ पढ़ाते समय आपको नींद नहीं आयेगी ? नहीं ! वाह आप भी जोरदार आदमी मिले हैं ! तो फिर आइए टहलते हुए चला जाया।

देखिये सँभल कर चलियेगा, सीढ़ियों पर ध्यान रखियेगा नहीं तो गिरा भी जा सकता है। आप मुझे न बतलायें, मेरे पाँव अन्धकार में इन रास्तों पर चलने के इतने अभ्यास हो गये हैं कि मुझे जरा भी दिक्कत नहीं होती। देखिये न सन्नाटे की बाँहों में रात कैसी जकड़ी पड़ी है जैसे आकाश की भुजाओं में कसी हुई हो। देखिये जल्दी चलने की कोई आवश्यकता नहीं धीमे-धीमे चलिये, कोई जल्दी नहीं है। देखिये इस समय नदी कितने निश्चिन्त भाव से, कितनी धीमी तथा शान्त गति से बह रही है।

अब हम लोग टहलते-टहलते राजघाट के पुल तक चलें, वहाँ भी मैं अनेक रातों तथा बहुत सी शामों में भटकता रहा हूँ।

हाँ तो बनारस लौटने के बाद शाम तो मेरी यूँही बीत गयी। मैं हल्की सी हरारत लिए घर पर ही रहा, कहीं टहलने भी नहीं निकला। दूसरे दिन सावित्री का एक पत्र मिला था, आज भी मुझे याद है। उसमें उसने लिखा था कि 'मैं बनारस आयी थी किन्तु तुम मिले नहीं। मेरे मन की सारी शान्ति तुम्हें देखे बिना मर गयी। मैं चाहती थी कि तुम्हारे साथ जीवन के कुछ क्षण बीतते। हम अपनी उस स्मृतियों के नन्दन-वन को अपनी लाचारी के आसुओं से सींचते और उसे हरा-भरा करते। किन्तु तुम कल-कत्ते चले गये। वैसे मैं तुम्हारे लिये परायी हो गयी हूँ बारेपन तक तो मैं बिलकुल ही तुम्हारी थी, किन्तु अब तन किसी और का हो गया है लेकिन मन तो अब भी तुम्हारा ही है।'

उस पत्र को मैं कई बार पढ़ गया। मन और तन दो बाते हैं, इस पर मैंने गौर किया। लगा कोई मुझे भुलावा दे रहा हो। वैसे पुरुष को नारी के मन और तन दोनों की आवश्यकता होती है।

मेरा ख्याल है एक की भी अनुपस्थिति में नारी और पुरुष के सम्बन्ध में कोई जीवन नहीं आ सकता न स्त्री या पुरुष किसी सुख का अनुभव ही कर सकता है। वैसे यह भुलावा भी मेरे रेगिस्तानी मन पर वर्षा की बूंदों का काम कर गया। कभी-कभी भुलावे भी बड़े सुखद होते हैं और मेरी कई शामें इसी भुलावे पर सोचने में बीत गयीं।

समझ में नहीं आता था कि क्या मेरा जीवन केवल भुलावों के लिये ही तो नहीं बना है? मैं इन्हीं बातों के चक्कर में उलझा था। वह पत्र सम्भवतः आज भी मेरे पास सुरक्षित पड़ा हो, क्योंकि मैं अपने सारे पत्रों को सुरक्षित रखने का आदी हूँ। मेरे मन में उसके उत्तर के बारे में अनगिनत बातें थीं। लेकिन उत्तर तो सीधा-सादा जाना था, उस उत्तर में मन को व्यक्त करने की जरा भी गुंजाइश न थी। क्योंकि जिसके लिये उत्तर लिखना था उसका तन दूसरे का था। मैंने महज पत्र में मोटे रूप से साधारण बातों का उल्लेख कर दिया।

सावित्री का जबाब शीघ्र ही आया। उसने उस पत्र में अपनी मानसिक स्थिति का विवरण दिया था। झूठ या सच पर उसने उस बार यह भी लिखा था कि तुम्हें पता नहीं मैं जब मिलन की रात पति के साथ सहवास सुख के लिये गयी, उस समय तुम्हारी याद मुझे हो आई। तुम्हें याद है न कि हम लोग नीम के गाछ के नीचे आंखमिचौनी खेला करते थे और जब कभी तुम मेरी आँखें मूँदते तो मेरे गालों को बड़ी निर्ममता से मसल दिया करते थे। वे ही दृश्य मेरी आँखों के सम्मुख आ गये, साथ ही अपनी विवशता भी। सच लिखती हूँ, उस दिन मेरी आँखों में आंसू आ गये थे। मेरे पतिदेव ने पूछा था कि 'आज के दिन तेरी आँखों में आँसू क्यों आये?' मैंने यह कह कर टाल दिया था कि मुझे मेरी मां की याद

आ गयी है। सम्भवतः तुम सोचोगे कि सावित्री यह सब गलत लिख रही है। लेकिन यह तो तुम्हारी बात है, इसके लिये मैं कर ही क्या सकती हूँ।'

उस पत्र ने मुझे और भी अधीर कर दिया था, उसकी उस निष्ठा ने मुझे हिला दिया था लेकिन किया भी क्या जा सकता था ? मैं उस रोज आधी रात तक सुनसान रास्तों पर टहलता रहा। लेकिन थोड़ा सन्तोष जीवन में यह था कि कोई मुझे भी याद करने वाला है ! मेरे लिये भी किसी और के आँसू की दो बूंदें धरती पर गिर सकती हैं।

देखिये न हम लोग फिर जल्दी-जल्दी चलने लगे। आप धीमें चलें, मैं इतनी तेजी से चलकर संभवतः आपका साथ न दे पाऊँगा।

अँधेरे का स्वर गूंज रहा है, किनारे के रास्ते वैसे कष्टप्रद लग रहे हैं जैसे कि जीवन स्वयं होता है। देखिये न ये पत्थर के विशाल भवन कितने खामोश हैं। लगता है इनके भीतर जीवन का कोई राग-रंग नहीं रह गया है। सैकड़ों वर्षों से यहाँ बाढ़ें आती हैं इन पत्थरों से टकराकर लौट जाती हैं। वैसे यदि इन पत्थरों को आँखें होतीं और इनकी जबान होती, तो ये नदी के चौबीस घंटो तक के हर रूपों का वर्णन कर देते। क्योंकि कोई भी मनुष्य २४ घंटे नदी में न रहता होगा। माझी लोग भी तो कभी न कभी आराम करने चले जाते हैं। लेकिन ये निश्चल तथा निर्वाक खड़े रहते हैं।

हाँ तो सावित्री के पत्रों का मैं उत्तर सीधी-साधी सरल भाषा में दिया करता था। वैसे लिखने पढ़ने में मेरी रुचि बढ़ रही थी, पत्रकारिता के साथ ही मुझे लिखने-पढ़ने में ख्याति मिल रही थी। जो भी मैं लिखता था, उसमें मेरी सच्ची अनुभूतियाँ प्रतिबिम्बित

होती थीं, इसलिये मेरे साहित्य की उस समय भी कद्र थी। देखिये ऊपर से देखने में मैं कितना नीरस और शुष्क लगता हूँ, जैसे दूर से देखने में हरीतिमा से निरावृत्त पत्थर, लेकिन बहुधा पत्थर के भीतर से भी निर्झर का अजस्र स्रोत प्रवाहित होता रहता है।

वैसे साहित्य की अनेक मान्यताओं पर उन दिनों काफी विवाद चल रहे थे। कई गुट थे, लेकिन मैं तो सर्वदा से एकांत साधना का पक्षपाती रहा हूँ। अपनी ख्याति के लिये गुट बनाना यह प्रारंभ से ही मेरे वश के बाहर था। हाँ मन की हर सच्चाई को मैं अभिव्यक्ति देने में बिलकुल नहीं घबड़ाता था। मुझे प्रकृति पसंद थी, प्रकृति पर लिखी गयी सादी कवितायें प्रायः मुझे कंठस्थ थी, प्रकृति ही मुझे अपने आँचल का साया भी तो सदा निःसंकोच, बिना झिझक के दिया करती थी। ऐसी हालत में मैं उसकी प्रायः उपासना किया करता था। मेरी भाषा मे कड़े शब्दों को स्थान नहीं था। प्रकृति जैसे कोमल शब्दों का ही चयन आप मेरे साहित्य में पाते होंगे।

तात्कालिक राजनीतिक परिस्थितियों में मैं बिलकुल उलझ नहीं पाता था, लेकिन आजादी के पहले चाहता था कि देश आजाद हो। देश की आजादी के लिए जो लोग कुर्बान होते थे उनके सम्मुख मैं श्रद्धानत था। वैसे आजादी मिलने के बाद भी मैं उन लोगों को बड़ी श्रद्धा भरी दृष्टि से देखता हूँ। राजनीति से जीवन का कोई भी अंग अछूता नही रह सकता। आप तो जानते ही हैं कि अपनी पुस्तकों तथा अपने निबंधो में मैंने सर्वदा भारतीय दृष्टिकोण को समर्थन दिया है। वैसे मेरी भारतीयता का यह अर्थ कदापि नहीं है कि जो भी भारतीय दर्शन या सिद्धान्त हैं, वे चाहे गलत भी हों सभी को अपना लेना चाहिये। मेरा यह मन्तव्य सदैव रहा है कि

सारे पुरातन तत्व जो हमारी प्रगति में बाधक हों, उन्हें त्यागना ही होगा और जो तत्व जीवन तथा समाज को अनवरत प्रगति के पथ पर बढ़ाते रहे, उन्हें ही ग्रहण करना होगा। इतना ही नहीं इसके लिए हमें इतिहास को फिर से खरी कसौटी पर कसना होगा। उस कसौटी पर जो चीजें, जो तत्व, खरे उतरें उन्हें अपनाने में किसी को कोई एतराज नहीं होना चाहिये।

इतना ही नहीं बन्धु, मैं भारतीयता का समर्थक हूँ, किन्तु मेरा दृष्टिकोण संकुचित बिलकुल ही नहीं है। मैं मानता हूँ कि कि घर की तथा देश की खिड़कियों को खुले रखने में आपत्ति नहीं होनी चाहिये, उसमें बाहरी हवा को बिना रोक आने देना चाहिये। हाँ, जो हवा हमारे अनुकूल नहीं हो उसे दृढ़तापूर्वक अस्वीकार करना चाहिये तथा जो हवा सचमुच हमारे जीवन को नवीन गति दे उसे स्वीकार करना ही है, तभी हमारा जीवन सम्पूर्णता के रंग में चमक पायेगा।

हाँ तो मैं कहाँ उलझ गया ? देखो न गंगा के जल पर किनारे के बिजली के बल्बों की छाया किस प्रकार लकीरें खींचे हुए हैं, लेकिन जल के ऊपरी सतह तक ही। इसी प्रकार मेरे जीवन में भी चमक की कई लकीरें बनीं-मिटीं लेकिन उनका असर ऊपरी रहा। जहाँ तक सावित्री का बात थी, वह तो मेरे अन्तर के निचले तह तक धँसी हुई है, मेरे जीवन के हर पग उसकी स्मृति से भरे हुये हैं, हर क्षण उसकी हँसी से चमकते हैं। उसकी आँखों की रोशनी से मैं खुद रोशन हूँ।

× × ×

शुरू में पत्रकारिता में जब मैंने प्रवेश किया था, उस समय मेरी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। किन्तु जब मैं लिखने-पढ़ने लगा तो ख्याति के साथ मेरी आर्थिक स्थिति में थोड़ा परिवर्तन भी

आया। मुझे आज भी उन छोटे-छोटे अपमानों का स्मरण है, जो मुझे मेरी आर्थिक दुर्गति के कारण मिलते थे। लेकिन वे अपमान मेरे लिए बड़े जीवनदायी होकर मिले। वे मुझमें शक्ति देते थे, दृढ़-संकल्प लाते थे। मैं सोचता था यह मान और अपमान का प्रयास सब ढोंग है। मनुष्य ने ये जो घेरे, जो वर्ग, बना रखे हैं इन्हें तो एक न एक दिन टूटना ही है।

देखिये न उस तट की ओर। आज आधी रात को चाँद निकल रहा है। लहरों पर उसकी कितनी लाल छाया पड़ रही है। अभी चाँद लाल है। देख रहे हैं न आप, क्षितिज पर किस प्रकार इसका अस्तित्व धीरे-धीरे ऊपर आ रहा है। देखिये, अभी एक लाल रेखा इस तट से उस तट तक खिंची हुई है पर मेरा ख्याल है, चाँद के रंग बदलते ही यह लाल रेखा भी चम्पई रंग की हो जायगी। यह सब एक हल्के तथा सजीव संगीत की तरह है। जैसे रात स्वयं एकतारा बजा रही हो। सन्नाटे का भी अपना एक स्वर होता है। लहरों की हलचल कभी-कभी इस सन्नाटे को तोड़ दे रही है।

देखिये न, चाँद अब अपना रंग बदल रहा है, पल-पल में उसके परिवेश मे परिवर्तन हो रहा है। अब वह उस पार के वृक्षों की ओट से बिलकुल हटकर ऊपर आ गया है। उस पार की बालुका-राशि देखो क्षण भर में रंग गयी है, यह भी एक प्रक्रिया है। अब रात की निःसीम भुजाओं में इस चाँद के अस्तित्व को जरा उठते देखो! सबके ऊपर उसका रंग छा गया, हर वस्तु में चमक आ गयी। हाँ ऐसे ही जब आदमी पर जीवन का कोई रंग चढ़ता है, तो उसके हर क्षण कुछ समय तक के लिए रँग जाते हैं। लेकिन हमें उस रंग के अस्तित्व पर अपनी वस्तुस्थिति को संभवतः नहीं भूलना चाहिये।

इस निष्पंद रात में इस तट पर केवल कभी-कभी कबूतरों के परों के फड़कने के स्वर के अलावे कोई स्वर नहीं मिलता अरे!

हम लोग कितनी जल्दी रास्ता तय कर गये ? बातों में ही डूबे हम पुल तक पहुँच गये और यहाँ से इस अर्द्ध चन्द्राकार या इन्द्र-धनुष की तरह फैली काशी को देखिये। किनारे के वल्ब लगता है नगर की आँखें हों जो रात में बोलती नहीं वरन् केवल घूरती रहती हैं। पुल के एक ओर नगर, दूसरी ओर केवल गहन अन्धकार तथा चाँदनी में चमकती हुई बालुका राशि और नदी की आगे बढ़ती धारा !

खैर आइये पुल पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक चला जाय। यहाँ इस स्थान पर भी मैं एकान्त में आकर अवसाद भरे क्षणों में टहलता रहता हूँ। मुझे याद है कि बादलों की घनी छाँह में, या वर्षा की बूंदों से ढँके पूरे शहर को मैं यहाँ से कई बार देख चुका हूँ। अन्धेरी रातों में भी मैं यहाँ अकेले घूम चुका हूँ। मुझे स्मरण आ रहा है कि मैं एक बार रात में वरुणा और गंगा के संगम पर पहुँचा था। वहाँ नदी का स्वर बहुत भयावना था, लेकिन भयावने पन से भी तो मेरी पुरानी दोस्ती है। भयानक वातावरण में मुझे शान्ति तो नहीं मिलती हाँ, उसमें भी कुछ वक्त कट जाया करता था।

आप मेरे वैयक्तिक जीवन पर ही कुछ सुनते रहना चाहते हैं ? अच्छा ! तो मेरी आर्थिक स्थिति जब कुछ ठीक हुई तो मेरे विवाह के लिये लोग-बाग आने लगे। लेकिन संभवतः मन का विवाह तो एक बार ही होता है। अगर उसी को संजोकर रखा जाय तो भी जीवन कभी-कभी रस का काम करता है। हर एकान्त तथा शुष्क क्षणों में सावित्री के साथ बीते क्षणों की स्मृति मेरे तन और मन दोनों को एक रस से सींच जाया करती थी। भीतर-भीतर मैं सोचता था कि यह रस ही मेरे अस्तित्व मात्र के लिये बहुत है।

× × ×

फिर शादी करके पत्नी को पूरा न्याय न दे सकूँ तो ? यह तो अच्छा नहीं होता कि मन कहीं और, और तन कहीं और। यह सब मुझे एक अजीब परिस्थिति में डाले हुए थे। दो एक तो इस जिद पर अड़े थे कि यदि आप चाहें तो लड़की भी देख सकते हैं। हाँ मैं जब की बात कर रहा हूँ तब इस तरह की परम्परा नहीं थी किन्तु फिर भी मुझ से लोगों ने यह सब कहा। लेकिन इस प्रश्न पर मैं बिलकुल जड़ था, न जाने कहाँ से वह जड़ता मेरे मन में समा गयी थी। लेकिन स्वयम् अपने साथ और मेरे साथ जो मेरी पत्नी होकर आती उसके साथ, मुझे न्याय इसमें दीखता कि मैं शादी न करूँ।

मैं स्वयं बन्धनों का विरोधी हूँ। एक दूसरे को बन्धन में बाँधकर फिर उसे हर क्षण तन देकर बिना मन दिये धोखा दिया करना यह बात मेरे गले से बिलकुल नहीं उतरती थी। न जाने क्यों मेरे जीवन में ऐसे मूल्यों का उदय हो गया था जिनके कारण तन और मन दोनों की प्यास बुझी ही नहीं, केवल अतृप्ति और तृष्णा ही मेरे जीवन के हर क्षणों पर छायी रही। वैसे सावित्री की स्मृतियाँ या उससे कभी न कभी मिलन हो जाया करता था।

इन सबका परिणाम यही रहा कि मैं आज तक अविवाहित हूँ। वैसे अब कभी-कभी अपने परिवार की आवश्यकता महसूस करता हूँ, लेकिन कुछ क्षणों तक ही यह बात मन में रहती है। लगता है पूरा जीवन मरुस्थलों की लम्बी यात्रा में झुलसते ही बीता। कभी-कभी कुछ नखलिस्तान मिले हों, पर उनके प्रति मोह नहीं पैदा कर सका। उनके सिवा मेरे जीवन की महायात्रा तक के बीच में कुछ खास नहीं रहा। हाँ लड़कपन की भूल कहूँ, या उसे एक स्वाभाविक प्रक्रिया, उसने मेरे जीवन को

एक निश्चित मोड़ दिया। एक ऐसा मोड़ जिस पर पहुँचकर मैं भटकता ही रहा।

पता नहीं कितने लोग ऐसे ही मोड़ों पर आकर भटक गये होंगे? पता नहीं कितने लोगों के जीवन में और मेरे जीवन में सामंजस्य होगा? क्योंकि सामाजिक बन्धन, इसके नियम और उप-नियम तो सभी के लिए समान हैं। कितने लोग इसके चक्कर में इसी तरह घिस गये होंगे? उनके जीवन के स्वप्न, उनकी आशायें धीरे-धीरे धुँधली हुई होंगी और वे जीवन की गति से लाचार होकर इधर-उधर भटक गये होंगे।

मेरे जीवन में पठन-पाठन ने मुझे थोड़ा सहारा अवश्य दिया और उसी के सहारे मैं खड़ा भी हूँ। केवल पुस्तकों और कलम ने मेरी दोस्ती को बराबर बनाये रखा। यदि इनसे भी मेरी दोस्ती समाप्त हो गयी होती तो सम्भवतः जीने का कोई तुक नहीं दीखता। वैसे कभी-कभी बहुत ऊब जाने के बाद सोचता हूँ कि इस निरर्थक तथा व्यर्थ जीवन की आवश्यकता क्या है? इस तरह के जीवन को यदि जीना कहा जाय तो निरर्थकता के सागर की ऊँची लहरों से ही आँखें टकरा सकती हैं। लेकिन मैंने अपने तमाम जीवन की निरर्थकता को रास्ता दिया। दिया क्या वह राह की इस भटकाव में खुद हो पा गया। लिखने और पढ़ने का मेरे जीवन में यही एक व्यसन है, इसे ही चाहे इन्द्रिय-भोग की संज्ञा दीजिये चाहे पलायन की! इसी में मैं कभी रस और कभी आत्म-तोष का अनुभव करता हूँ।

इसी अनुभव के सहारे मैं खड़ा हूँ, मेरे जीवन का रस और सार अब यहीं तक सीमित हो गया है। वैसे सुना है कि मनुष्य का मन बहुत चंचल होता है, उसकी यात्रा की गति बड़ी तेज होती है। मनुष्य से अधिक उसका मन किन-किन अन्तरालों में

भटकता रहता है इसका विवरण मनुष्य स्वयं नहीं दे सकता। उसी प्रकार मेरा भी मन न जाने कहाँ-कहाँ भटकता रहता है। चाहता हूँ इसे रोकूँ लेकिन संम्भवतः कभी नहीं रोक पाया हूँ। यह मन की भटकन ही तो है कि हम दोनों इस निर्जन में आकर खड़े हैं और पता नहीं क्यों, कैसे, और किस लिये अपना समय इस रात में यहाँ गुजार रहे हैं?

अब देखिये न चाँदनी के पद-तल में विखती हुई नदी की हर लहर का रूप बदला हुआ है। इन वृक्षों की पत्तियों पर भी चाँदनी के रंग का झण्डा उड़ रहा है। लगता है हवा बह नहीं रही है, कितनी निस्तब्धता है। लेकिन इस निस्तब्धता को भी हम दोनों हिलाये हुये हैं। क्योंकि यदि हम न जागते तो मुझे आज ऐसा लगता कि सृष्टि की सम्पूर्ण सत्ता ही सो गयी है। वैसे प्रेम की भावना मनुष्य को रात-रात भर जगाये रह सकती हैं। ऐसी ही भावनाओं के वश मैं प्रायः रात-रात भर बैठकर लिखता रहता हूँ और जीवन का क्रम इसी तरह चतुर्दिक छाये गहन एकांत में बीतता रहता है।

बहुत दिनों बाद एक बार सावित्री फिर आयी और मुझसे मिली थी। मुझे उसको देखने से यही लगा कि उसके भीतर कुछ ऐसा है जो उसे प्रसन्न नहीं रख रहा है। लगा जैसे भीतर का कोई दुःख उसे निरंतर काट रहा हो, समाप्त कर रहा हो। क्योंकि उसके चेहरे पर विषाद की रेखायें दिख जाती थीं।

हम लोग साथ ही सिनेमा देखने गये। मुझे आज भी स्मरण आता है कि मैं बराबर यह सोचा करता था कि जब कभी सावित्री मिलेगी तो यह कहूँगा, वह कहूँगा, पर जब वह सामने होती तो लगता वे सारी बातें हवा की तरह कहीं चली गयीं। हम लोग एक दूसरे की ओर देखते हुए घंटों साथ बैठे रहते। उसके तन की ओर ही मैं बुभुक्षित-सा देखा करता था। वैसे एक

रंग क्या अनेक रंगों को मिलाकर इस सृष्टि की रचना हुई है। लेकिन उसका वह रंग जो मेरी दृष्टि के साथ उस पर चढ़ता-उतरता मुझे ढूंढ़े भी आज तक नहीं मिला। हम लोग उस बार काफी दिनों के अंतर पर एक दूसरे से मिले थे।

सावित्री को देखने से मुझे यही लगा कि उसे भी कुछ खास सुख शायद नहीं मिल रहा है। जीवन की और तन की आवश्यकताओं की पूर्ति ही संभवतः जीवन की चरम उपलब्धि नहीं होती? उसके लिए मन की आवश्यकताओं की भी पूर्ति का होना अत्यावश्यक है। लेकिन देखने से यही लगता था कि उसके जीवन में कोई खास कमी है। उसमें चंचलता न थी।

उस बार वह दो दिनों तक साथ रही। संभवतः दूसरे दिन मैंने उससे कहा था 'मुझे अपने होठों को चूमने दो।' वैसे मैं शायद नियत सीमा के अतिक्रमण के लिये तैयार था। मैं यह भी सोच चुका था कि आज सावित्री मुझे ना नहीं करेगी। लेकिन उसने सिर हिलाकर मना कर दिया। उसकी आँखों में एक लाल रंग की डोर खिंच गयी थी, जैसे झील के जल में इन्द्रधनुष की छाया तिरने लगी हो। वह दुर्बल तो थी ही लेकिन मेरी बातों से संभवतः उसके शरीर में कंपन आ गया था। जैसे निर्झरों के तट पर रहने वाले वृक्ष, निर्झर से उठे सीकरों के पड़ने से काँपने लगते हैं। वह झिझक कर चल पड़ने के लिये तत्पर हुई क्योंकि वह एक स्त्री थी। लेकिन उसके बाद उसने अपने को नियंत्रित किया और मुझसे कहा, 'आओ बैठें।'

मुझको लगा था जैसे यह उसका आमंत्रण हो, मैंने उसे अपनी बाँहों में भर लिया। मुझे स्मरण है वह शरद ऋतु थी, बाहर खंजनों की पाँत बैठी हुई थी, आकाश में बादल भी थे। उस बार अनेक वर्षों की खड़ी की गयी धैर्य की दीवार ढह गयी

थी, उसके केश से भीनी गंध उठ रही थी। वैसे नारी के शरीर की अपनी एक विशेष गंध भी होती है, वह सब मिलकर मुझे मदहोश कर रही थी। मेरे मर्म के घन अतल तक शायद वह सब गंध उतर गयी थी और सावित्री मेरे भुजपाश में विद्युत सरीखी पड़ी हुई थी।

वैसे मैंने चञ्चल बिजली को आकाश में अनेकानेक बार देखा है। कभी लगा है यह किसी का कंगन चमक गया हो, कभी लगा कोई अपना पाँव दिखा गयी हो। कभी लगा कि बस अब वह आयी! ऐसी अनेक भावनायें एक साथ मन में उठी हैं। मैंने यह भी देखा है कि वर्षा की झरती हुई बूदों को यह बिजली की चमक रँग जाया करती है। सावित्री बिजली की तरह मेरी बाहों में थी और उसकी आँखों में आँसुओं की बरसात थी।

एक चम्पई रंग वाली नारी मेरी बाहों में समर्पित पड़ी थी। वैसे मैंने उसके होंठो का अपने हाठों से केवल स्पर्श किया था। उससे जो रस मिला आज तक वह क्षण मुझे वैसे ही याद है। हर मनुष्य के जीवन में कुछ ऐसे क्षण आते हैं जो हमेशा उसके जीवन में चमकते हैं और वह उन्हीं क्षणों की स्मृतियों में कभी-कभी सुख या दुख से काँपता है और अपना जीवन गुजार देता है।

हाँ उसकी आँखों में तैरते आँसुओं के ऊपर मैंने एक भय देखा। किसी द्वारा देखे जाने का भय नहीं। वैसे हमें कोई न देख पाता, लेकिन वह परोशान थी। स्थिर चित्त होने पर उसकी आँखों में मैंने कुछ क्षणों के लिये एक दया एक करुणा की रेखा देखी थी और दामिनी को कसे बन्धन जैसे जल कर राख हो बिखर गये थे। उसके पतिदेव किसी से मिलने गये थे। फिर शाम को हम घूमने निकले थे।

हम दोनों नदी तट पर एकान्त में घण्टों बैठे रहे। मैंने उस

दिन ढलते सूर्य के पीले रंगों को फिर उसके सुवर्ण होते रंग को लहरों पर लोहित होते हुए देखा था। दूर किनारे के खड़े कगारों को ढलते सूर्य के बदलते रंग से कुछ ही देर में अनेक रंगों में रंगते देखा था। मेरे दिल की धड़कन धीरे-धीरे शान्त हो रही थी, मैं कुछ चैन को साँस ले रहा था। लेकिन कुछ क्षणों के लिए हमारे ऊपर एक मौन-सा छा गया था।

सावित्री के साथ बैठे जाने वाली बड़ी नावों की ओर टकटकी लगाये देख रहा था जिनके मस्तूलों पर अभी भी ढलते सूर्य के रंग की चमक थी, और लगता था इसी तरह जीवन के रंगीन क्षण आँखों के सामने से दूर होते चलते जायेंगे। जिन्हें मैं निष्क्रिय बैठा देखता रहूँगा। हाँ उसकी ओर फिर अगर हाथ उठेगा तो वह रिक्त ही लौटेगा? संभवतः सावित्री भी वहाँ तट पर बैठे-बैठे कुछ इन्हीं बातों के चिन्तन में पड़ी थी। हम लोग प्रायः खामोश बैठे थे। बहुत कम बातें हुई। बातें हुई भी तो यह क्या है? वह क्या है? और मैं उसकी इन बाल-जिज्ञासाओं या बालकों को बहलाने वाले प्रश्नों का उत्तर रह-रह कर दे दिया करता था।

उसी रात उसे अपने पतिदेव के साथ घर लौटना था। हम तट तक आये थे बहुत उमंग से लहराते हुये, लेकिन लौटते समय दोनों के पाँव शिथिल थे। हम दोनों ऐसे थके लग रहे थे जैसे सैकड़ों मील की पैदल यात्रा से लौटे दो यात्री हों।

मैंने सावित्री तथा उनके पतिदेव दोनों को स्टेशन तक पहुँचाया। आधी रात तक जागता रहा और फिर घर आकर काफी देर तक किसी बोझ से हल्का होने का प्रयास करता रहा। लेकिन हल्का हो ही नहीं पाता था। किसी भी प्रकार उस रात सोने का प्रयत्न किया पर सो नहीं सका। हर समय वही एकान्त और जीवन का निरानन्द मुझे चतुर्दिक घेरे हुए था। लगता

कि समुद्र के बीच में चारों ओर ऊँची लहरें उठ रही हैं जिनसे मैं घिरा हुआ हूँ। यदि आवाज भी दूँ तो तट से कोई सुनने वाला नहीं था। उस घेरे में केवल मेरी प्रति ध्वनि ही मेरे साथ थी।

मुझे स्मरण है कि मैं उसके बाद बहुत तेज बीमार पड़ गया। ज्वरग्रस्त था, दो एक मित्र कभी-कभी हाल-चाल पूछ लिया करते थे। वह ज्वर काफी दिन तक रहा, उसमें मेरा स्वास्थ्य काफी गिर गया था। खैर फिर धीरे-धीरे चलने-फिरने लायक हुआ। उसी बीच मेरे एक मित्र ने अपने एक परिचित से मेरा परिचय करा दिया। परिचय कराने के समय परिचित की पत्नी भी साथ थी, उनको एक पुत्र भी था। उनकी पत्नी को मेरे बारे में कुछ जानकारी पहले से भी थी। मेरे दोस्तों से ही उसने संभवतः मेरे सम्बन्ध में कुछ सुन रखा होगा।

खैर पहली मुलाकात में ही उस महिला ने मुझ से कहा कि आपसे तो मैं बहुत दिनों से मिलना चाहती थी। मैंने गौर से देखा कि उनके पतिदेव दुबले-पतले थे, संभवतः देखने-सुनने में उनमें और उनकी पत्नी में जमीन आसमान का अन्तर था। वे हाथों में बच्चे को उठाये चल रहे थे, आगे-आगे उनकी श्रीमतीजी थीं। उस दिन हम लोगों के टहलने का कार्यक्रम बना। दोस्त तो सभवतः कुछ आवश्यक काम से चला गया, लेकिन मैं उस दम्पति के साथ घूमने निकला।

हम लोग टहलते-टहलते इसी तट पर पहुँचे। यहाँ हम लोग एक रेस्तरां में देर तक बैठे रहे। वैसे यहाँ के रेस्तरां के जीवन में कुछ है तो नहीं फिर भी वक्त तो किसी प्रकार बीत ही जाता है। उस दिन हम लोग साथ ही देर तक टहलते रहे। उनकी पत्नी लम्बी थीं, गोला मुँह था। सौंदर्य अधिक तो नहीं था लेकिन फिर भी उसके चेहरे पर दीप्ति थी। वह बहुत सुन्दरी नहीं थी, लेकिन उसके रंग का भी एक अजीब आकर्षण था।

उसकी आँखों में झील की गहराई थी। झील में जैसे लहरें एक स्वर-मय त रंग की तरह हिलती रहती हैं वैसा ही कुछ मुझे उसकी आँखों में लगा। मैं उसकी ओर अचानक ही काफी आकृष्ट हो गया। हम लोग पहले दिन ही काफी रात तक साथ-साथ टहलते रहे तथा एक दूसरे का परिचय पाते रहे।

× × ×

दूसरे दिन मुझे स्मरण है मैं खुद न जाने क्यों उनके घर पहुँच गया। मैं जाने वाला था कहीं और, किसी एकांत में, लेकिन मेरे पाँव अचानक ही उस दम्पत्ति के घर की ओर उठ गये। दोनों ने मेरा काफी आतिथ्य किया।

बाहर के कमरे में ही उन दोनों का एक चित्र टँगा हुआ था। देखने में लगता था कि पत्नी शादी के वक्त छरहरे बदन की एक युवती थी, लेकिन अब उसके तन में कुछ स्थूलता आ गयी थी। वैसे वह एक चंचल युवती थी उसने जब जरा-सा एकांत पाया तो अपनी शादी का दुःख मुझे बताया। उसने कहा कि पैसे की कमी से मेरी माँ ने इस बदसूरत आदमी से मेरा विवाह कर दिया। युवती के सपने तो बहुत ही बड़े थे, लेकिन वे सारे के सारे स्वप्न धीरे-धीरे ढहने लगे। उसने कहा "इस व्यक्ति के साथ बँधकर लगता है मेरा जीवन एक गंदे जल की तरह हो गया है और वह ऐसा गंदा जल जो गड्ढे के घेरे में हो, जिसमें से दुर्गन्धि आने लगी हो। मैं स्वयं अपने से काफी असंतुष्ट रहती हूँ।"

इन बातों से उस स्त्री पर मेरा आकर्षण धीरे-धीरे बढ़ने लगा, मेरी आय भी उसके पति से अधिक थी। मैंने सचमुच उसकी आँखों में एक बुझी ज्योति की झलक, एक निस्पंदता पायी थी। मैंने भी सोचा आओ इसे प्यार करें!

उसने मुझसे मेरे बारे में भी बातें कीं। मेरे अविवाहित होने पर उसने दुःख व्यक्त किया। एक बार उससे मुझसे पूछा कि तुम इतने निरीह और दुःखी क्यों दीखते हो? मैंने कहा था कि 'मेरे जीवन में है ही क्या जो मैं सुखी दिखूँगा। मेरी आँखों में एक बार झाँकने से ही मेरे अन्तर के दर्द को, मेरी निःसीम लाचारी को कोई भी देख सकता है।' मेरा अपना ख्याल था कि करुणा अगर कहीं किसी के हृदय के किसी कोने में होगी तो वह अवश्य जगेगी। मैंने उस नारी के सम्बन्ध में सोचा और लगा कि वह मेरे पर करुणार्द्र हो रही है। उसमें मेरे लिये कुछ ऐसी भावनायें विकसित हो रही हैं कि वह मेरे लिये भी कुछ सुख की व्यवस्था करेगी ही।

वैसे सुख और दुःख के विभेद को मैं आज तक जान नहीं पाया। लेकिन भीतर से सर्वदा कुछ ऐसा ही लगता था जिसे मैं दुःख की संज्ञा आसानी से दे देता था। सुख अगर कभी मिला तो कुछ क्षणों और कुछ घंटों के लिए। इस बीमारी ने मेरे अन्दर के अहं को भी तोड़-मरोड़ डाला था। पहले किसी की करुणा से मुझे चिढ़ थी और अब मैं करुणा का जैसे याचक बन गया था। मेरे जीने के लिये आर्थिक साधन तो थे, लेकिन मेरे मानसिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति कहीं से नहीं हो रही थी। मुझे उस नारी से मिलकर थोड़ी यह आशा बँधी कि अब संभवतः थोड़ा मानसिक सुख मुझे मिल सकेगा। मैं जीवन की निराशाओं में उलझा पड़ा था, उस उलझन को खोलने वाले की मुझे तलाश थी। जब मैं दूसरे दिन उस स्त्री से मिला तो मैंने बड़ी आशा से उसकी ओर देखा। वैसे प्रफुल्ल यौवन उसमें नहीं था, लेकिन देखने से लगता था कि इसका तन संभवतः अच्छी देख-रेख के बिना बहुत जल्दी खराब हो गया है।

मैं धीरे-धीरे उस नारी के काफी समीप पहुँच चुका था। वह मेरी उदास आँखों में घूरा करती थी। उसने कई बार यह दुहराया 'तुम उदास क्यों रहते हो ? तुम्हारी आँखों में यह निस्सीम स्पंदन हीनता क्यों है ? मैं तुम्हारे किस काम आ सकती हूँ ?' हम लोग अब प्रायः शाम को टहलने जाते थे। वह, उसके पति, उसका पुत्र और साथ-साथ मैं भी होता।

प्रायः हम लोग बगीचे में बैठा करते थे। वह अपने पति के पास कभी उसकी जाँघों पर सर रखकर सो जाती, कभी बच्चे के साथ दौड़ती। ऊपर चाँद ताड़ के वृक्ष के पत्तों से झाँकता जाता था। मुझे लगता कि यदि इसी प्रकार यह मेरी जाँघों पर सर रखकर सोती, मेरी गोद में यदि इसका सर होता और घंटों तक मेरी उँगलियाँ इसके बालों से खेलती रहतीं ! कभी उसके धड़कते वक्ष पर मेरे जीवन का कुछ क्षण भी अगर अगरु-धूप से जलकर उड़ जाते तो मुझे उससे कितनी शक्ति, कितनी आस्था तथा कितना विश्वास मिलता।

मुझे याद आता था कि पहले रोज जब मैं उससे मिला था तो उसने मुझसे कहा था कि मेरी तो बड़ी इच्छा थी आपसे मिलने की और आज भेंट हो ही गयी। उस दिन वह एक बड़ी सुन्दर साड़ी में थी, उसके जूड़े से बेले की भीनी गंध उड़ रही थी। मैं और वह एक रिक्शे पर थे, उसके पति साइकिल से थे। उसके पतिदेव के साथ साइकिल थी इसलिये उसके साथ मुझे रिक्शे पर बैठने का अवसर मिला था। वैसे वह अवसर मेरे लिये बिल्कुल नवीन न था। मैं सावित्री जब भी आती थी उसके साथ रिक्शे पर बैठकर प्रायः घूम लिया करता था। किंतु यदि इतनी आत्मीयता से मुझे किसी के साथ बैठने का मौका मिला था तो वह थी श्यामा !

बदन में बहुत हल्की स्थूलता होने पर भी उसकी चंचलता और चपलता का कोई जवाब न था ! जब वह कभी बगीचे में अपनी पिंडलियों को खोलकर बैठ जाया करती थी तो मेरी आँखें उसकी पिंडलियों में ही उलझ जाती थीं। वैसे चाहे सुर्ख चाँद पत्तियों को टालकर आकाश में उठ रहा हो, या गहन रात का भुज-पाश घटा को कसे जा रहा हो, मेरा मन, मेरा तन उस श्यामा की ओर ही लगा रहता था। मुझमें एक ऐसी उद्दाम भावना जगती थी कि मैं काँप उठता था और सोचता यदि मैं उसके तन में समाहित हो पाऊँ तो...!

पहले दिन जब हम-वह साथ गये थे तभी मैंने श्यामा से कहा था कि 'आज अरसे के बाद मुझे नारी का सामीप्य मिला है।' उसने हँसकर कहा था, 'तो इसमें कुछ बुरा तो है नहीं।' मेरी बाँहें श्यामा की बाँहों से टकराती थीं, इसमें भी मुझे लगता था कि मैं सुखी हूँ, लगता था कि सुख की वर्षा में मैं भींग सा रहा हूँ।

वैसे मेरे जीवन में दुःख की घनी अँधियारी ही चतुर्दिक रही है। सवंदा सुख के तारे मेरे लिए दूर आकाश में टिमटिमाते दीखते रहे हैं। मेरे मन का पंछी उड़-उड़कर निःसीम तथा अपरिचय के आकाश में केवल अपने पंखों को ही थकाता रहा है।

रात को लौटकर मैंने थोड़ी संतोष की साँस ली थी। लगा था, कि नहीं अब कुछ सहारा मिलेगा, निरुद्देश्यता थोड़ी भंग होगी ! भंग हुई भी। मैं प्रायः कार्यालय जाने के पूर्व सुबह उसके घर जाता ; शाम को उसके साथ प्रायः टहलने की योजना बनती और हम टहलते-घूमते।

मुझे उसके होंठ बहुत प्रिय थे। लगता कि उसके होंठो में सृष्टि का सारा अमृत भर गया हो ! मदिरा से भरे हुए, हमेशा छलकते हुए पतले होंठ उसके तन में सर्वोपरि थे। उनका स्थान

सबसे ऊँचा था। जब भी उसके होंठों पर मेरी दृष्टि जाती मेरे तन की शिरा-शिरा झंकृत हो जाती थी। जब वह हँसती थी तो मेरे मन का कोना-कोना एक अजीब राग से रँग जाता था, मेरे मन से संगीत के सोते फूटने को व्याकुल हो जाया करते थे।

उन्हीं दिनों मैंने कुछ कवितायें लिखीं। वैसे उसके पूर्व कवितायें लिखना छोड़कर आलोचना-साहित्य और केवल गद्य लिखा करता था। लेकिन धीरे-धीरे मेरे संगीत के स्वर फिर फूटने लगे। उनकी बाढ़ को मैं न रोक सका। मेरे मन के तटों पर वह बाढ़ नहीं रुक सकी, वह कागज पर आने लगी और मेरी उन चंद कविताओं को लोगों ने पसंद भी किया।

उसके घर आने-जाने का क्रम बराबर जारी रहा। घंटों मैं उसके पास बैठकर उसे घूरता रहता था। वह एक क्षण के लिये भी यदि पास से हटती तो मुझे बुरा लगता था, यदि कोई उसके घर आता तो भी मुझे कुछ बुरा ही लगता था। उसके पतिदेव सीधे-सादे व्यक्ति थे, स्कूल में प्राध्यापक थे, अच्छे परिवार के थे, लेकिन धन नहीं था। जीविका किसी प्रकार चल रही थी।

लेकिन श्यामा अपने जीवन से काफी असंतुष्ट थी। कभी-कभी जब भी मैं अकेला मिला था उसने मुझसे कहा था कि मेरा जीवन दुःख का जीवन है, मेरी एक भी कल्पना साकार नहीं हुई। एक बदसूरत आदमी के साथ बाँध दी गयी, वैसे कुछ विशेष कष्ट नहीं है। मुझे भी इसमें कुछ सार दीखता था। शादियों को इस विषमता ने पता नहीं कितने घरों और कितने व्यक्तित्वों को खंडहर कर दिया होगा इसका लेखा जोखा तो नहीं किया जा सकता किन्तु केवल कल्पना की जा सकती है। लेकिन समाज सदा से अपनी चाल चलता आ रहा है, समाज के आंतरिक गत्यवरोधों से मानवीय जीवन की वास्तविक शक्ति कितनी कुंठित हो रही है वैसे

इसका आभास पाना सरल कार्य नहीं है फिर भी इसका कुछ अहसास तो बड़ी सरलता से किया जा सकता है। श्यामा की निकटता में मुझे इसका आभास मिल रहा था। सावित्री के उदास चेहरे का भी मुझे अक्सर स्मरण हो आता। मैंने उसके आँसू देखे थे, लेकिन उसके मुँह से कभी मैंने कोई खास शिकायत नहीं सुनी थी। जो कुछ भी आप उससे इस सम्बन्ध में सुन सकते थे वह सब केवल उसकी आँखों से, मुँह से कदापि नहीं।

वैसे सावित्री को कोई भी देख कर यह कदापि नहीं कह सकता था कि वह दुःखी है। लेकिन उसकी आँखों की गहराइयों में झाँकने से उसके जीवन के आंतरिक गतिरोधों का पता चल सकता था। वह शादी के बाद दुर्बल हो गयी थी। हाँ उसकी आँखों की डोरों के जरिये यदि मैं कभी उसके मन मे उतरा होता तो सचमुच मुझे उसके जीवन के अनजाने पक्ष की जानकारी हो पाती। वह सारा दर्द सारी असफलता, टूटे तथा भग्न स्वप्नों से लदी अपनी नाव को किसी के सामने नहीं रखती थी। लेकिन आँखों में ये सभी एक-एक करके अपना रंग दिखा जाया करते थे।

वह बहुत कम बोलती थी। वैसे वर्ष में दो एक बार हमारी उसकी मुलाकात हो ही जाया करती थी, लेकिन उसने अपनी आत्मपीड़ा को कभी जाहिर नहीं होने दिया। मुझे याद आ गया एक बार मैं उसके घर घूमते, टहलते पहुँच गया था। वह अपने घर के दालान के कोने में रक्खी हुई एक चौकी पर बैठी थी। उसने काफी उत्साह पूर्वक मेरा स्वागत किया था। मेरे सामानों को उसने ऐसे उचित ढंग से रक्खा जैसे किसी की पत्नी रखती हो। मैं उस चौकी पर चित लेट गया था वह भी उस पर बैठ गयी। वैसे हम एक ही खाट पर कभी-कभी लेट भी जाते थे। लेकिन हम लोगों के बीच एक ऐसी रेखा सदा रहती थी जो एक को दूसरे से अलग किये रहती थी।

मुझे पानी-खाना सभी वह बड़ी तन्मयता से देती थी। लगता था नारी के समर्पण का एक पक्ष यह भी है। तन के अलावे वह मन से मेरी थी, इससे मुझे अरसे तक बड़ा संतोष मिलता रहा है। हम दोनों में एक दूसरे के प्रति आकर्षण था, फिर भी दोनों में एक अजीब नियंत्रण था। कोई वस्तु संभवतः हमें सीमा के भीतर जकड़े हुई थी। वह भी अपने पति के यहाँ से एक महीने के लिए अपने घर आयी हुई थी।

मैं उसके साथ उस गाँव की उन अमराइयों में कभी-कभी टहल आता था। पुरानी स्मृतियों से अपने को भिगोकर मुझे लगता था कि वे सभी बीते हुए क्षण जीवन के उन मीलों के महत्व-पूर्ण पत्थर हैं जिनसे जिन्दगी की राह पर आदमी कभी गुजरता है।

× × ×

लेकिन श्यामा इसके विपरीत थी। वह अपने दुःख की ही चर्चा मुझसे अधिक करती थी। जीवन में जहर पीकर भी जो उसके असर को मुँह पर नहीं लाते उनमें थी सावित्री, लेकिन श्यामा शायद उस जहर को पचा न सकी थी। कभी-कभी तो मैंने सुना था कि वह अपने पति को काफी डाँट दिया करती थी। लेकिन सुन्दरी होने कारण ही संभवतः पतिदेव उसकी बातों से रुष्ट न होकर उसकी कुछ क्या सभी बातों को मान जाया करते थे।

मैंने कभी-कभी उसके होंठों को चूमने की कोशिश की थी। लेकिन प्रायः वह मुझे उस अमृतोपम रस से वंचित रखती थी। वह अपने निहायत बढ़िया तथा पतले होठों को मेरे पास नहीं लाती थी। उसने मुझसे यह भी कहा था कि मैं कभी अपने पति को अपने इन खूबसूरत होंठों को चूमने नहीं देती। वह कहती थी कि 'नहीं इन्हें मैं कभी किसी को चूमने नहीं दूँगी।' मुझे लगा कि पति को बद-

सूरती से न कभी उसके पति ही इन खूबसूरत होंठों का रस ले सके, न श्यामा ही।

मैंने सुना था कि नारी के होठों में अमृत होता है और पुरुष को उस अमृत के पीने में स्वर्ग-सुख की अनुभूति होती है। पुरुष नारी के अधरों पर जब अपने अधर रखता है तब वह एक क्षण के लिए संसार के दुखों से मुक्त हो जाता है; भले ही वह मुक्ति क्षणिक ही क्यों न हो। लेकिन एक ऐसा भी अधर मुझे मिला जो इस एक क्षण के सुख से बंचित था, या उससे किसी को भी उस मीठे स्वाद की अनुभूति नहीं हो सकी थी।

मैंने इसका जिक्र उन दिनों अपने एक मित्र से किया था। उसने मुझे बताया था कि कभी-कभी ऐसी बातों के पीछे मनोवैज्ञानिक कारण होते हैं। श्यामा का पति बदसूरत था, उसे उससे अन्तरमन से घृणा होगी। अपने पति से वह चिढ़ती होगी तथा उससे वह दुःखी होगी। उसके स्वप्न भंग हुए होंगे, उसकी इच्छायें फूल की पंखड़ियों की तरह पाँवों-तले रौंदी गयी होंगी। इसी कारण उसमें एक जबर्दस्त घृणा पैदा हुई होगी और इसीलिए वह अपने रस से भरे हुए होंठों को किसी को छूने नहीं देती होगी।

देखो मित्र! यह भी अपने ढंग की एक बात है! यह भी शादी का एक परिणाम है, इसीलिए जब भी किसी ने मुझसे शादी की चर्चा की मैंने उसे इंकार किया। हो सकता था कि मुझे भी कोई ऐसी ही पत्नी मिलती जो भीतर के मन से मुझे घृणा और नफरत की दृष्टि से देखती, मुझे एक पशु समझती और अपने को एक जनने की और खाने तथा काम करने की मशीन! मुझसे जब भी लोग मेरी शादी की चर्चा करते तो मैं और भी उदास हो जाया करता था।

मेरी उस उदासी के दर्द को लोग पहिचान नहीं पाते थे। क्योंकि उनकी पुत्रियाँ उनको बोझ हो जाती थीं। वे किसी भी

प्रकार अपने को इस बोझ से अलग कर देना चाहते थे। उन्हें उन अबोध तथा यौवन से भरी-पूरी युवतियों के स्वप्नों का, उनकी इच्छाओं का कुछ भी ख्याल न रहता था। वे तो अपने बोझ को जल्दी से किसी के गले मढ़कर उऋण हो जाना चाहते थे। लेकिन इस प्रकार के गलत काम में मैं साझीदार होता, यह मुझे कदापि मंजूर नहीं था। श्यामा से मेरा परिचय हो चुका था, उससे मेरी अच्छी खासी दोस्ती भी हो गयी थी।

× × ×

श्यामा को देखकर ही मैं शादी के इस रूप से भी परिचित हो गया था। मैं नहीं चाहता कि कोई ऐसा कलंक मैं आजीवन ढोता रहूँ। वैसे उस बोझ को मैं ढो पाता या नहीं, कहा नहीं जा सकता। इसीलिये मैं विवाह के नाम पर सदा नाराज होता रहा। वैसे मुझे भी कभी-कभी लगता पत्नी होती, बच्चे होते और जीवन की एक कमी पूरी होती। लेकिन तब मैं इस निश्चय पर दृढ़ था कि शादी नहीं करूँगा। अब तो अक्सर तबियत करती है कि शादी कर लूँ।

वक्त हाथ से निकल गया। मेरा पूरा जीवन अविवाहित ही बीता। कभी-कभी विवाहों के जलसों में शामिल होता हूँ, नये वर-वधू को देखता हूँ तब मन के किसी कोने से एक टीस एक दर्द उठती है और वह मेरी शिरा-शिरा में छा जाती है। लेकिन एकांत में सोचता हूँ कि मेरी शादी अब होनी ही चाहिये। वैसे आप तो जानते हैं कि पिछले पाँच छ वर्षों से मेरी शादी के प्रश्न पर काफी मजाक भी उड़ाये गये, मेरे कुछ मित्रों ने मेरे नाम से समाचार-पत्रों में विज्ञापन भी छपवा दिया कि मुझे पत्नी की आवश्यकता है।

यह सब मैं एक तरह का भोग भोग रहा हूँ। अभी कुछ मित्र मुझसे यह भी मजाक करते हैं कि आपकी शादी करा दूँ और वे मेरे दुबले कद, झुके शरीर तथा असमय के पके बालों को देखकर यदि ऊपर से न हँसते हों तो आँखों से उनकी हँसी अवश्य झलकती है। उनकी आँखों से शरारत स्पष्ट रूप से टपकती है। वैसे मेरे बाल, मेरा ख्याल है, गहन चिंताओं के कारण पक गये, मेरा शरीर संभवतः इसलिये नहीं पनप पाया कि इसे किसी ओर से सींचा ही नहीं गया।

अब तो आप जानते ही हैं कि किन्हीं अवसाद के क्षणों में मैं शराब भी काफी पी लेता हूँ। कभी-कभी तो बहुत पी लेता हूँ और घर जाकर बेहोश सा पड़ जाता हूँ ताकि मैं, मेरा व्यक्तित्व और मेरी चिंतन-प्रक्रिया सभी एक साथ बेहोश हो जाया करें। उनके होश में रहने पर मैं बिलकुल हो सो नहीं पाता। करवटें लेते ही रातें गुजर जाती हैं।

इधर-उधर बैठता हूँ। लोगों से कट-कटाता रहता हूँ। मेरी पुस्तकों की मेरी लेखनी की शक्ति की ख्याति अवश्य है, लोग मेरी भाषा में जीवन की शक्ति और कला पाते हैं। यह सब इसलिये कि मेरे मन का सारा दर्द, सारी लाचारी, अपने उदात्त रूप में मेरी कलम के द्वारा कागज पर उतरती है। यह निश्चित है कि मेरा दर्द, मेरी कुंठा केवल व्यक्तिगत नहीं है। अभी भी समाज में कितने ऐसे लोग पड़े होंगे इसीलिये मेरी भाषा तथा मेरे भावों में सार्वजनीनता का गुण है। जिससे लोग मेरी ओर तो नहीं लेकिन मेरी पुस्तकों की ओर आकृष्ट होते हैं।

कभी-कभी लोग मुझसे शादी के बारे में अभी भी पूछ लिया करते हैं, वैसे मैं अब इसके लिये कहाँ तक उपयुक्त हूँ यह कहा नहीं जा सकता। मेरे पास पैसे तो हैं लेकिन शरीर निर्बल

तथा जर्जर हो चुका है। फिर भी मैं भीतर से हँस कर ही यह उत्तर देता हूँ कि "भाई चिर कुँआरे के लिए तो चिर कुँआरी की आवश्यकता है। लोग मेरी सौंदर्य-भावना से भी परिचित हैं। लोग जानते हैं कि मैं जिस सौंदर्य की सराहना करूँगा उसका स्तर कितना ऊँचा होगा। इसीलिये मैं उस सम्बन्ध में नहीं बोलता।

मैंने कभी-कभी सुना है कि दो एक मेरे मित्र इस चक्कर में थे कि वे न हो तो कहीं से किसी पत्नी को खरीद कर ही मुझे दे दें। हमारे देश में अभी कहीं-कहीं निर्धनता के कारण ऐसा भी होता है कि पिता-पुत्री के लिये दहेज न देकर उसकी बिक्री कर देता है। लेकिन मैंने मित्रों के इस प्रयास को सर्वदा हतोत्साहित किया है।

मेरे कानों में कभी-कभी यह व्यंग्यात्मक आवाज भी आयी है कि यह औरत के लिये पागल हो गया है, क्योंकि जहाँ भी मैं सौंदर्य देखता हूँ, उससे अभिभूत हो जाता हूँ। विशेष कर नारी के लिये मेरे मन में जितनी कमजोरी है उतनी कमजोरी संभवतः दुनियाँ के किसी दूसरे आदमी के मन में न होगी। लेकिन इसका कारण भी है। मेरी समझ में आता है कि एक ओर तो मधु और रस के कुंभ ढलकते रहते हैं, दूसरी ओर मैं उस रस और मधु से बंचित सड़कों पर मारा-मारा फिरता हूँ।

तो ऐसी स्थिति में सुन्दरी युवती, सुन्दरी महिला जिसे भी देखता हूँ देखता ही रह जाता हूँ। मैंने कई बार मन में इसका दृढ़ निश्चय किया कि केवल प्राकृतिक सौंदर्य की उपासना में जीवन बिता दूँगा। रात भर टहल कर प्रकृति के बदलते परिवेश में अपने टूटे व्यक्तित्व को आश्रय दिया करूँगा। सोचा, कि कभी बैठकर लहरों के गान सुना करूँगा, कभी डूबते हुए सूरज तो कभी उगते हुए चाँद की लाली में ही मैं नारी के रूप को देख लिया करूँगा।

लेकिन लाख दृढ़ निश्चयों के बाद भी मेरे इस कमजोर मन को इन तमाम जगहों में शान्ति नहीं मिली। वैसे शान्ति तो नारी-सौंदर्य को देखने से भी नहीं मिलती लेकिन एक क्षण के लिए लगता है जैसे कुछ चमक गया हो। मुझे याद है कि मैंने एक ऐसी खूबसूरत औरत देखी थी जिसके गुलाबी गालों पर जब वह हँसती थी तो एक नहीं, दो नहीं बल्कि तीन-तीन गड्ढे पड़ जाया करते थे। आपने नदी में भंवर तो देखी होगी। इन गालों में पड़े गड्ढे भी नदी की भँवर से कम खतरनाक नहीं होते। कितनी नावें नदी की इन भवरों में डूब जाती हैं, वैसे ही गालों के गड्ढों में भी न जाने कितनों के मन की नावें डूब गयी होंगी? पता नहीं उनका कोई निशान भी बचा होगा या नहीं?

श्यामा के भी गालों पर तीन नहीं, दो नहीं लेकिन एक गड्ढा अवश्य बनता था, जिसमें मेरा मन अक्सर डूब जाया करता था। वैसे में बहुत प्रयत्न करता था कि मैं उसके यहाँ न जाया करूँ लेकिन शाम होते ही मेरे पाँवों में न जाने क्या हो जाता था और मैं उसके घर पहुँच जाया करता था। उसे देखने उसकी चंचलता को देखने। मन में लाख निश्चयों के बाँध-बाँधा करता था कि उससे दूर रहूँगा, लेकिन न जाने क्यों वे निश्चय के बाँध एक झटके से टूट जाया करते थे और पता चलता था कि मैं उसके पास बैठा हूँ।

कभी-कभी सोचता था कि वह किसी की पत्नी है उस पर न मेरा कोई अधिकार है, न होगा। लेकिन नारी पर अधिकार की बात जब सोचता तो लगता कि मन पर तो कुछ क्षणों का अधिकार हो ही सकता है। मुझे ऐसा भी महसूस होता था कि या तो मैं खुद को धोखा दे रहा हूँ, या उसे या उसके पति को। उसके पति भी मेरा थोड़ा बहुत सम्मान करते थे। मैं किसी भी

हालत में यह नहीं चाहता था कि उनकी जो भी भावनायें मेरे लिये बनी थीं उन पर किसी प्रकार का धक्का लगे। लेकिन यह सारी बातें सतह तक ही आकर रह जाती थीं।

मैं उसके यहाँ जाता तो मन और तन दोनों भूखा रहता। कभी उसके शरीर का यदि कोई भी अंग खुल जाता तो मैं उसकी ओर अनायास ही टकटकी लगा कर देखने लगता। कभी उससे नारी के रूप और सौंदर्य की बातें करता, कभी नारी के स्वभाव की। एक दिन उसने मुझ से पूछा था कि तुम्हारी आँखों में इतना दर्द क्यों रहता है ? मैं जब भी तुम्हें देखती हूँ तो मैं तुम्हारी आँखों में किन्हीं संचित भावों को पढ़ने लगती हूँ जिसके पढ़ने से मुझे लगता है तुम्हें सहारे की आवश्यकता है, तुम्हें मेरी छाँह की, या मेरे स्नेह की आवश्यकता है। मैं न जाने क्यों तुम्हारी ओर अनायास ही झुकती चली जा रही हूँ, पता नहीं क्या होने वाला है ?

शाम को प्रायः हम लोग कभी-कभी टहलने निकलते। टहलते समय कभी-कभी वह मेरे पास आकर कन्धे से सटकर चलने लगती थी। उन स्पर्शों से मुझे रोमान्च हो जाया करता था, थोड़ा सुख भी मिलता था, थोड़ा दुःख भी। क्योंकि वहीं मैं उस पर अपना कोई हक न होने की बात सोचने लगता था। शाम को घूमते-घूमते हम लोग कम्पनी बाग में काफी देर तक बैठते थे। एक रोज वहाँ उसने कई गीत गाये। जो बहुत अच्छे लगे। चाँद निकल चुका था, चाँदनी पत्तियों से छन कर इधर-उधर अमलतास के फूलों जैसी घास पर बिखरी पड़ी थी। मेरा हाथ कभी-कभी उसकी केश-राशि पर चला जाता था। यह मैं बहुत सचेत होकर करता था क्योंकि उसके पति भी उसके साथ थे।

उस दिन वह दौड़ने लगी, दो एक और छोटे बच्चे थे उनसे संभवतः वह खेल रही थी। मैं पहले ही आपको बता चुका था कि

उसमें चंचलता काफी थी और इसी लिये वह दौड़ रही थी। उसके पाँवों में कहीं काँटा चुभ गया। वह लंगड़ाती हुई मेरे पाँवों पर वह अपना पाँव रखकर बोली कि काँटा निकालो खैर थोड़ा प्रयास मैंने किया थोड़ा उसके पतिदेव ने भी किया। फिर मैंने अपनी रूमाल निकाली और उसके पाँव के तलवे में उसे बाँध दिया। उस रोज लौटने पर मैं काफी देर तक उनके साथ रहा। संभवतः उन्हीं के यहाँ चाय भी पी।

देखिये अब तो आपको जमुहाई आ रही है, लगता है आप चलते-चलते थक गये हैं। ऊपर चाँद बीच आकाश में थम गया है। मुझे भी लग रहा है जैसे जीवन ठहर गया हो। देखिये न वे बालू के ढूहे इस चाँदनी में कैसे चमक रहे हैं! दूर मंदिरों की धूमिल छाया और इन्द्रधनुषी झुकाव वाला यह नगर यहाँ से कैसा दीख रहा है? आइये हम लोग इस पुल की पटरी पर बैठकर कुछ देर तक विश्राम करें। मुझे तो लगता है जैसे मेरी नींद भी मुझे बिलकुल अकेला समझकर छोड़कर चली गयी है। आप यदि ऊबें तो मुझे अवश्य इशारा कर दें, मैं लौट चलूँगा। अरे! आपको हो क्या गया है? मेरी इन निरर्थक और व्यर्थ की बातों में आपको क्यों रुचि जग रही है, यह बात मेरी समझ में नहीं आ रही है?

अच्छा तो आप मानव मन की गहराइयों में जाना चाहते हैं? ठीक है। इसी तरह ऐसी ही छोटी-मोटी घटनायें मानव मन की रचना करती हैं। इसी प्रकार आदमी पिछली भूलों के आधार पर अपना भावी मार्ग भी निर्धारित करता है। मनुष्य की दुर्बलताओं और सबलताओं दोनों से अच्छी तरह परिचित रहना चाहिए। क्योंकि मनुष्य न केवल सबल है न केवल दुर्बल। दोनों को मिलाकर ही वह बनता है। किसी में सबलता अधिक होती है किसी में निर्बलता।

तो आप मेरे मन की इस भाग दौड़ में नैतिकता के स्थानों को जानना चाहते हैं ? मैं मनुष्य की सारी नैतिकता को उसके आत्म-संतोष के सामने एक तुच्छ वस्तु मानता हूँ, क्योंकि नैतिकता का भी बड़ा कुगढ़ रूप सामने है। मनुष्य अनादि काल से ईश्वर की उपासना करता आ रहा है, लेकिन वह ईश्वर की हत्या भी करता चला आ रहा है। वैसे पाप और पुण्य की सभी चर्चा करते हैं, लेकिन जिसे हम पाप कहते हैं उसे हम प्रायः हर क्षण किन्हीं न किन्हीं स्थितियों में करते रहते हैं। इस देश में नरक और स्वर्ग दोनों की प्रायः चर्चा रहती है। नरक की कितनी भयावनी कल्पना आदमी के सामने रखी जाती है, फिर भी वह उस भयावनी कल्पना को भूल जाता है। यहाँ हर बात पर स्वर्ग और नरक के द्वारों की कल्पना की जाती है। इसलिए स्वर्ग नरक को ताक पर रख देना ही ठीक है।

हाँ तो मेरी भीतरी इच्छा रहती थी कि श्यामा के होठों का अमृत अपने होठों पर बहने दूँ। उस अमृत की लहरों से अपने को सींचूँ, उसके होठों पर भी मैं एक जाम छलकाऊँ लेकिन तभी भीतर से कोई कहता 'नहीं यह ठीक नहीं, वह किसी की पत्नी है, उसे न छूओ !' लेकिन एक सैलाब में बड़े-बड़े भवन, नगर और देश के देश बह जाते है, अगर आदमी किसी सैलाब में बह जाय तो गलत क्या है ? इसीलिये मैं चाहता था कि इन बंधनों मे अलग रहकर किसी सैलाब में मैं भी बह जाऊँ। इसलिये उन सभी मानसिक बंधनों से मैं धीरे-धीरे उन्मुक्त हो रहा था। भीतर-भीतर श्यामा मेरे मन के करीब आ रही थी, मेरे तन की हर शिराओं में वह व्याप्त थी। मेरे रोम-रोम में वह हवा की तरह लहरा जाती थी, मेरे मन में वह सुगंध की तरह छायी हुई थी।

उसने मुझमें दर्द की जो झलक पायी थी उसके लिये वह कहती थी ? 'यह दर्द मेरे मन के हर स्तरों में धँसता चला जाता है। मैं भी तुम्हारी ओर आकृष्ट होती चली जा रही हूँ।' उसने मुझसे बताया था कि 'तुम मुझसे जो चाहो सो करना। मेरा तन मन सब तुम्हारा है, मेरे हृदय में तुम्हारी आँखों की सारी निराशा जीवन की सारी तपन धँसती है और मेरे भीतर से कोई कहता है कि मैं तुम्हें छाया दूँ, संतोष दूँ। न जाने क्यों और कैसे वह मेरे पर थोड़ी द्रवित हुई। अब तो हम लोगों का मिलना और भी बढ़ गया था।

उसके पतिदेव सीधे तो थे लेकिन इतनी समझ उनमें थी कि उनकी पत्नी और मेरे सम्बन्ध उत्तरोत्तर घनिष्ट होते चले जा रहे हैं। कभी-कभी मैं जाता और वह न रहती तो मैं उन्हीं से पूछता तो वे मुझे कुछ इधर-उधर की जगह बता देते। जिस समय वे उत्तर देते उनके मुख पर एक विचित्र सिकुड़न आ जाती। मुझे लगता था कि उन्हें यह सब कुछ अच्छा नहीं लगता।

एक दिन श्यामा ने मुझसे कहा था कि 'आते हो तो मेरे पतिदेव से भी कुछ बातें कर लिया करो !' उसने कहा कि वे कहते हैं कि तुम अक्सर आते हो तो मुझसे ही बातें करते हो और उनकी उपेक्षा करते हो। श्यामा को इसलिए कभी-कभी डाँट भी पड़ी थी, लेकिन उसने अपने को हमेशा मेरे लिये सुलभ रक्खा। उन दिनों मुझे उसके साथ रहने में सुख का अनुभव होता था।

लेकिन जब मैं अलग होता तो मेरा दुःख काफी बढ़ जाया करता था। भीतर से कोई कहता ये औरतें तेरे लिए नहीं बनी है, यह सब धोखा है। दुनियाँ में और भी बहुत से काम हैं जहाँ तुम्हारे जैसे लोगों की आवश्यकता है। यह नारी, उसका सामीप्य, उसका तन, उसका मन और उसका निरुपम सौंदर्य, यह

सब तेरे लिए नहीं है। इन सबके लिए भटकने में तुम्हें शांति नहीं मिलेगी, क्योंकि इनमें कोई एक रसता नहीं है। वैसे संसार में एक रसता आ जाय तो वह भी जड़ता की ही बात मानी जायेगी, किंतु यहाँ एक रसता का मेरा अर्थ यह है कि इन सबमें टिकाऊपन नहीं है। मुझे औरत स्वयं में एक अनबूझ पहेली लगा करती थी। मैं उसके मन को समझ पाना सदा से मुश्किल समझता रहा हूँ, समझ रहा हूँ, समझता रहूँगा।

इतना ही नहीं उससे मिलने के बाद मन में चारों तरफ एक आँधी सी उठकर छा जाती थी। मेरी शिरा-शिरा एक गहन अशांति से बोझिल हो जाया करती थी। मन तड़फड़ाने लगता था। ऐसे हर अवसरों पर मैं सोचता कि 'नहीं मैं श्यामा के यहाँ जाना बन्द कर दूँगा, यदि मेरे लिए नारी का सामीप्य उसके सौंदर्य का सुख नहीं बना है तो उसे छोड़ दूँगा। जिसे मैंने शुरू-शुरू में बिलकुल अपना समझा था जब वह अपनी नहीं हुई तो ये दूसरे बेगाने मेरे भटकते, धूप में तपते, मन को कहाँ से शान्ति दे पायेंगे ? ऐसी ही भावनायें मेरे मन को घेरे रहती थी।

उधर श्यामा मेरे इस तनाव को भी कभी-कभी महसूस करती थी। मैं उससे कह चुका था कि मैं कहीं गलत जगह उलझ रहा हूँ। मुझे एकान्त से पुरानी दोस्ती है, इसने मेरा साथ जितनी ममता से जितनी एकाग्रता से निभाया है, संभवतः दूसरा उस तरह न निबाह पाये। लेकिन संभवतः श्यामा मेरे मन के इस पक्ष को नहीं समझ पाती थी। अक्सर वह मुझसे कहती कि मैं पहिली बार तुम्हारी ओर इतनी आकृष्ट हुई हूँ। लेकिन मुझे उसके इस कथन पर भरोसा नहीं होता था। मैंने तो उससे यह भी कहा था 'यदि एक क्षण के लिये तुमने मुझे पूरे हृदय से कभी चाहा होगा तो वही मेरे लिये पर्याप्त है, क्योंकि मैं तो एक-एक

क्षण को जीवन में महत्वपूर्ण मानता हूँ। ऐसे क्षण मेरे मन की गुफाओं में मणि के दीप की तरह जलकर भीतर ही भीतर प्रकाश करते रहते हैं।

उस प्रकाश में मेरा मन निश्चित रूप से मुझे जीवन की नयी राहों पर, जीवन को उदात्त राहों पर, ले जाकर खड़ा कर देगा।' प्रायः ऐसी बातें श्यामा से जब भी एकान्त मिलता तभी कर लेता। लेकिन हमें प्रायः एकान्त नहीं मिल पाता था। जब भी मैं उसके घर जाता उसके पतिदेव साथ रहते। घूमते-टहलते सभी मौकों पर वे जैसे पहरा लगाये रहते। यह सब मेरे मन को और भी तोड़ता था। मुझमें वही पुराना भाव, कि यह सब मेरा नहीं है दूसरे का है, जगता और फिर मैं मन की शान्ति को ढूँढ़ने के लिए अन्धकार और एकान्त में जाकर खो जाता था, यह भटकाव वैसे ही मेरे में काफी था, श्यामा से अलग होकर तो मै केवल भटका करता था, इधर से उधर, यहाँ से वहाँ।

वैसे निरुदेश्य भटकने वालों को समाज तुच्छ और हेय दृष्टि से देखता है। शायद मैं भी उन्हीं तुच्छों और हेय-दृष्टि से देखे जाने वाले लोगों में से था? मैं प्रायः अकेले ही चला करता था। साहित्य के क्षेत्र में उस समय भी गुटबन्दियाँ थीं। पर मेरा साहित्यिक मूल्य बढ़ा था। कुछ लोग मुझे समझने लगे थे, मेरी रचनाओं की चर्चा भी पत्रों में होने लगी थी। श्यामा के पास उस समय बैठकर जब वह अपनी पूरी आँखों से मुझे देखती थी, लिखने में मेरी रुचि बढ़ने लगी थी। मुझे लगता था कि सचमुच मेरा अपना व्यक्तित्व अब समाज का बन जायगा। मेरे मन में इससे थोड़ा संतोष होता, मेरे लिखने पढ़ने में मेरा जो समय लगता, वही समय संभवतः सबसे अधिक अच्छा गुजरता था। पुस्तकों में मैं प्रायः खोया रहता था।

× × ×

श्यामा ने उन दिनों मेरे तन को वैसे ही अच्छादित कर लिया जैसे वर्षा के दिनों में ऊँची-ऊँची पर्वत शृंखलाओं को बादल ढँक लें। मुझे स्मरण आ रहा है कि मैं एक बार वर्षा के दिनों में पहाड़ी क्षेत्रों में गया था। बादलों से ढँके पर्वतों का कभी तो पता चलता था कभी लगता था पर्वत खो गये हैं। कभी सफेद बादल दो पर्वत चोटियों के बीच ऐसे दिख जाते थे जैसे उनके बीच कोई बरसाती नदी का जल प्रवाहित हो। उस समय मेरा मन आत्म-ग्लानि से भर गया था। मेरी इच्छा हुई थी कि यदि मुझे कोई बादलों की तरह आच्छादित कर देता, कोई करुणावान, तरल, आर्द्र, स्निग्ध, अनेक परिवेशों वाला बादल का टुकड़ा जिसमें विद्युत की कड़क भी हो और चमक भी, वह मेरे व्यक्तित्व को कभी इस प्रकार चारों ओर से घेर ले, कि न मुझे अपने अस्तित्व का कुछ क्षणों के लिए पता चले न दूसरों के। मेरी वह पुरानी इच्छा जैसे पूर्ण हो गयी थी।

श्यामा से मेरी शारीरिक निकटता, उसके शरीर की नग्न आकृति, उसका शरीर आकर्षक था, खूबसूरत सुडौल पतले स्निग्ध तथा स्मित से भरे हुए होंठ थे, उसके उरोजों में पुष्टता नहीं थी, उनमें ढलाव आ चुका था। संभवतः उसने अपने उरोजों को ठीक ढंग से नहीं रखा था। मैं जब उससे मिला था तो उसकी आयु मुझसे कम थी, लेकिन शरीर में कुछ शिथिलता आ चुकी थी।

श्यामा ने मुझसे यह भी कह दिया कि उसका पति से असंतोष केवल पति की बदसूरती के कारण ही नहीं है, वरन् उन्हें वह जल्दी अपने साथ रहने भी नहीं देती, क्योंकि उनमें पौरुष की भी कमी है। श्यामा भी एक विचित्र नारी थी! वह जब भी कहीं घूमने निकलती भी मुझे भी साथ ले लेती। मैंने कई बार देखा था कि उसके पतिदेव को यह सब अच्छा नहीं लगता था, लेकिन

वे कर भी क्या सकते थे ? वे उसके इशारों के दास थे, उसकी सुन्दरता के कारण। मैं प्रायः श्यामा से कहता कि 'मेरा तुम्हारा इस तरह आजीवन सम्बन्ध बना रह सकता है।' लेकिन उसे इस बात पर विश्वास न होता था।

वैसे उसके घर मेरे जैसे अनेक मित्र आते-जाते थे। अपने पतिदेव के अनेक मित्रों से श्यामा वैसे ही हँसकर चंचलतापूर्वक बातें करती जैसे मुझसे। कभी-कभी मुझे लगता कि मुझे ही इसने यह सब प्यार, रस, स्नेह और साथ में अपना सब कुछ नहीं दिया होगा, वरन् दूसरों को भी दिया होगा ? वैसे मैं इस बारे उससे स्पष्ट पूछने में घबड़ाता था। लेकिन एक बार पूछ ही लिया तो वह कसमें खाने लगी और कहने लगी कि 'नहीं मैंने अपना तन यदि पति के सिवा किसी को सौंपा है तो तुम्हें।'

वैसे उन दिनों थोड़ा नारी के सामीप्य के कारण मैं कुछ संतुष्ट, कुछ भीगा और स्निग्ध रहता था। अलग रहने पर भी कल्पना में श्यामा के साथ बँधा-सा रहता था। लेकिन उसका इस प्रकार सबसे खुलकर मिलना-जुलना हँसना, कभी-कभी मुझे खटकता था। मुझे लगता था कि मैं खुद को धोखा दे रहा हूँ और श्यामा मुझे।

धीरे-धीरे मैंने देखा कि श्यामा मेरे पैसों पर भी नजर रखने लगी है। उसने कभी-कभी मुझसे कुछ न कुछ माँगा। मुझे वह सब देने में कोई हर्ज न महसूस होता, यदि मेरा उसका शारीरिक सम्बन्ध न रहा होता। लेकिन फिर धीरे-धीरे वह कुछ न कुछ रुपये मुझसे माँगने लगी, मुझसे थोड़ी दूरी भी रखने लगी। मैं उसकी किसी भी माँग को इसलिये इनकार नहीं करता था, कि नारी के पास जो भी होता है वह सब उसने मुझे दिया था, लेकिन उसका मूल्य देने में मुझे आत्मग्लानि का अनुभव होता था।

कभी मैं यह सोचता कि श्यामा मेरे व्यक्तित्व या मेरे किसी गुण पर आकर्षित नहीं हुई है, उसे मेरे जीवन के निःसीम एकांत

ने मेरे लिये सहृदय नहीं बनाया, मुझे लगता था कि वह मेरे भटकाव पर आर्द्र नहीं हुई है, वरन् वह सब मेरे अर्थ ने किया है जिसे मैं कमाता था और अकेले खर्च किया करता था। जब भी मेरे मन में उसके बारे में ऐसा ख्याल आता तो मेरी शिरा-शिरा दर्द से झंकृत हो जाती थी। मुझे लगता था कि सचमुच नारी मेरे लिये बनी ही नहीं है। उसके साथ बीता हुआ मेरा हर क्षण मेरे जीवन में एक छल और छद्म के अलावे कोई महत्व नहीं रखता।

मुझे लगता कि फिर श्यामा मे और बाजार में फर्क क्या रहा ? कलकत्ते के मेरे उस व्यवहार का भी मुझे स्मरण हो आता। जहाँ मैं एक युवती को अपमानित कर चुका था, जहाँ एक अत्यंत खूबसूरत हर अंग से यौवन की मदिरा में डूबी युवती के तन की लिप्सा से मैंने अपने को एक झटके से अलग कर लिया था और 'पुरुषत्वहीन' की उपाधि पायी थी। लगता कि श्यामा भी वैसी ही है, वह भी अपने तन का मूल्य मुझसे लेगी। उसने मूल्य लिया भी। क्योंकि मैं जब भी उससे मिलता मेरे तन की भूख मुझे अंधकार की गुफाओं में ढकेल देती थी। जहाँ मुझे श्यामा, और उसके तन के अलावे सृष्टि की किसी भी वस्तु का ख्याल नहीं रह जाता था। जीवन के सारे मूल्य गायब हो जाते थे, और वहाँ मैं शारीरिक भूख के वश उस एक अत्यंत साधारण सी औरत के सामने झुका सा रहता था।

मेरा यह ख्याल था कि जीवन में किसी को धोखा न दिया जाय, लेकिन धीरे-धीरे मेरा यह ख्याल भी धूल-धूसरित हो गया। मैं श्यामा के पति को धोखा दे रहा था; यह सत्य भी कभी-कभी मुझे ग्लानि से भर देता था। श्यामा भी कभी-कभी इस सत्य को स्वीकार करती और मुझसे कहती 'देखो तुम्हारे लिये मैं अपने पति

को भी धोखा दे रही हूँ। हाँ जब कभी मैं तुमसे पैसे पाती हूँ तो मेरी ग्लानि कुछ कम हो जाती है।' पता नहीं उसकी आत्मग्लानि कम होती होगी या बढ़ जाती होगी ? किन्तु कभी-कभी वह मुझे उदास अवश्य दीखती थी। मेरी समझ में कुछ भी नहीं आता था। मैं बार-बार सोचता कि श्यामा से सारे सम्बन्ध हटा लूँ।

कई बार मैंने प्रयास भी किया, लेकिन मुझे भीतर से लगता कि उसने मुझे मूल्य लेकर ही सही कुछ दिया है और मैं लोलुप-सा फिर उसके द्वार पर जा पहुँचता। बाद में तो कभी वह अपने पड़ोसी के यहाँ चली जाती, कभी कहीं, मैं घंटों बैठा रहता लेकिन वह न लौटती। यह सब मेरी समझ में बिलकुल न आता, क्योंकि कभी वह कहा करती थी कि 'मुझे तुमसे प्यार है', कभी वह कहती थी कि 'मुझे तुम पर दया आती है।' लेकिन इन तमाम बातों का अन्त ऐसा होगा यह मैंने कभी नहीं सोचा था। मैंने बड़ी एकाग्रता से उसकी छाँह स्वीकार की थी। लेकिन यह छाँह ऐसी होगी, उसका यह रूप भी होगा ? इसका मुझे अन्दाज तक नहीं था।

अब तो मेरी प्यास वह तभी बुझाती, जब मैं उसका मूल्य चुका देता। मूल्य चुकाने पर लगता कि मैं जानवर हो रहा हूँ। मुझे लगता जैसे मेरे भीतर कोई जानवर है, जो मुझे ऐसे अवसरों पर आदमी जैसा व्यवहार करने से रोक देता है। बाद में न जाने क्यों अपने से ही मुझे वितृष्णा होती, मैं परीशान होता, मुझे लगता कि हो सकता है श्यामा का यह पारिवारिक जीवन ही एक दम नष्ट हो जाय। कभी मेरे साथ या कभी दूसरे के साथ वह ऐसा ही सम्बन्ध रख सकती है। उसके पति के और दोस्त थे ही, वैसे वह कुछ अभिजात्य कुल के परिवारों में भी आती-जाती थी। उसके पति को उस पर इतना विश्वास था कि वह इन जगहों पर अकेली चली जाती थी।

मैंने सोचा था कि उसे समझाऊँ कि इस प्रकार के जीवन का अन्त होना चाहिये। तन को न बेचकर मन का मन से ही सौदा हो तो भी कुछ ठीक है, वर्ना एक बाजारू औरत में और एक परिवार की महिला में अन्तर ही कितना होता ? मैंने दो एक बार प्रयास किया कि उससे बातें करूँ। लेकिन उससे फिर मेरा एकांत में मिलना संभव नहीं हो रहा था। मुझे थोड़ा यह विश्वास था कि कभी उसे समझाता तो शायद वह समझ पाती, क्योंकि मनुष्य में मानवीय उदात्त गुणों की कमी नहीं रहती। लेकिन एक समय आता है जब उसके उदात्त गुण धीरे-धीरे जीवन से लुप्त हो जाते हैं और वह काल और परिस्थितियों की लहरों में बहता चलता है। उसे कुछ पता नहीं चलता कि वह किस दिशा में क्यों बह रहा है ? लेकिन सत्य यही होता है कि वह बहता है, बहता रहता है।

श्यामा की दशा भी ऐसी ही थी। उसे बिलकुल समय नहीं मिलता था कि मैं उससे एकाध घंटे बातें करता। मैंने उसके यहाँ धीरे-धीरे जाना बंद कर दिया। जब कभी रास्ते मे दिखता, भेंट हो जाती, तो मैं कुछ न कुछ उसके यहाँ न जाने का बहाना बना लेता। अगर उसने मूल्य न लिया होता तो मैं उसका संभवतः जन्म-जन्मान्तर तक ऋणी रहता। उसने जो मुझे अपने रस से सींचा था, हो सकता था उसके सुख का प्रवाह जन्म-जन्मान्तर मेरे मन में रहता, लेकिन मुझे मिली तिक्तता और कटुता वह भी किसी दूसरी ओर से नहीं वरन् अपने आप से ही।

क्यों क्या विचार है घर लौटा जाय, या पुल पर अभी और टहला जाय? वाह! आप आज रात टहलकर ही काटना चाहते हैं ? खूब मिले आप भी आज ? देखिये किनारे कितने निस्तब्ध हैं।

चारों दिशाओं में केवल रात के गहन सन्नाटे का एक दर्द भरा स्वर बज रहा है और इस वातावरण में हम केवल दो व्यक्ति इस पुल पर चल रहे हैं। अब सुनिये, किसी धीमी चालवाली ट्रेन की आवाज सुनाई पड़ रही है, जिसे सुनकर मेरे दिल की धड़कन हमेशा तेज हो जाती रही है।

आप कतई ऊब नहीं रहे हैं। जीवन के उन पृष्ठों पर आपकी दृष्टि बार-बार क्यों जा रही है? वैसे मैंने हर प्रयास किया है कि आज आपके सामने मैं जीवन के उन पृष्ठों को भी खोलकर रखूँ जिन्हें अभी तक किसी के सामने इस प्रकार नहीं रखा था। हाँ तो धीरे-धीरे श्यामा के यहाँ जाना भी बन्द करने लगा। क्योंकि जब भी मैं उसके यहाँ जाता, मेरा दम घुटने लगता, एक अजीब पीड़ा मुझे चतुर्दिक घेर लेती, मैं बेचैन हो जाया करता था। इस घुटन से बचने का जो मुझे एकमात्र मार्ग दीखा वह यह था कि मैं उसके घर जाना बन्द कर दूँ। मैंने किसी प्रकार बन्द भी किया। दो एक बार तो बन्द करने के निश्चय के बाद भी उसके घर की ओर मुड़ गया था, किन्तु मैंने दृढ़ता पूर्वक न जाने का निश्चय किया।

मैंने फिर इसी तरह बिलकुल अकेले टहलना प्रारम्भ किया। अकेले टहलने में सचमुच मुझे लगा कि अब कुछ मेरी घुटन समाप्त हुई है। उतनी मानसिक अशांति मुझमें तब नहीं रह गयी थी जितनी श्यामा के साथ रहने और उससे अलग होने पर हुआ करती थी। वैसे अकेले टहलते समय मुझे दिवास्वप्न जैसा होता था, मुझे ऐसा लगता था जैसे श्यामा मेरे साथ चल रही हो, जैसे श्यामा मुझे बुला रही हो। वह मुझसे कह रही हो,'नहीं, यदि कोई गलती हुई हो तो वह अब दुहराई न जायेगी, तुम आओ!' लेकिन मुझे लगता यह सब

आत्म-प्रवंचना है, खुद को धोखा देना है। यदि जीवन केवल एकांत बिताने के लिये है तो उसे उसी प्रकार बिता दो।

लेकिन मेरी मर्मान्तिक पीड़ा को कोई समझ न पाता। आँधी आने पर जैसे नाव की पालों में हवा भर जाती है, वैसे ही मेरे मन में भी एक दर्द की हवा भर जाती और जीवन जैसा भी था वैसा ही तीव्रता से चलने लगता। यह पता जरूर न चलता कि अपनी नाव कहाँ जायेगी, किस घाट बहेगी? या कहीं भँवर में पड़कर डूब जायेगी, या किसी पत्थर से टकराकर टूट जायेगी? लेकिन पाल में हवा थी, कैसे भी हो वह चलाये जा रही थी, जीवन चल रहा था। लेकिन जीवन की इस ज्वालामुखी तृष्णा का क्या होगा? मेरी प्यास आज भी मुझे जला रही है।

मुझे स्मरण आ रहा है कि जिन दिनों श्यामा से काफी निकटता हो गयी थी, उन दिनों मुझे सावित्री भूल गयी थी। लेकिन फिर सावित्री की याद मेरे लिए बँची रह गयी थी। उस बीच सावित्री के दो एक पत्र भी आये थे। लेकिन न जाने क्यों मैं उनका उत्तर नहीं दे सका था, यूँहीं महीनों गुजर गये थे। उस पर भी मुझे कम गुस्सा न था। वह स्वर्ग-नरक और न जाने किन-किन गलत कल्पनाओं में पड़कर अपने तन को मुझसे अलग रखती थी। मैं सोचता था कि उसका यह सब कथन झूठ है कि उसका मुझसे लगाव है, अन्यथा इस तन का शून्य मेरी इच्छाओं से अधिक है? जिसे किसी न किसी दिन राख में मिलना है। मुझे नारी के तन पर लगे इतने बन्धनों की बात कतई समझ में नहीं आती थी। पर सावित्री के उस दिन के आँसुओं की याद करके मैं काँप उठता था।

वैसे नारी के तन को शक्ति-सम्पन्न और धनी-मानी लोग खुले बाजार में खरीदते थे, औरत खुले बाजार में बिकती भी

थीं पर मुझे बिकने वाली औरत की आवश्यकता कदापि नहीं थी। लेकिन भूख की लाचारी होती है। सड़कों पर गुजरते हुए अनजान युवतियों की ओर मैं बेकार ही घूरा करता था। कभी-कभी कोई मुड़ कर देखती, कभी कोई ख्याल भी न करती और मैं भूखे मन से प्रायः घर लौट आया करता था।

धीरे-धीरे मैंने नीचे के स्तर के दो एक दोस्त बनाने शुरू किये, जिनके संग आसानी से हँस-बोलकर शाम काटी जा सके। क्योंकि दिन तो दफ्तर में कट ही जाता था, शाम गुजारनी मुश्किल होती थी इसलिये ऐसे दोस्तों की आवश्यकता महसूस हुई थी।

शाम उन दोस्तों के संग गुजरने लगी। उनके वैयक्तिक जीवन की विभिन्न घटनायें बड़ी मनोरंजक थीं। उनके जीवन-दास्तानों को यदा-कदा सुनने में मुझे बड़ी दिलचस्वी रहती थी। धीरे-धीरे उनमें से कुछ दोस्त घनिष्ट भी हो गये। प्रतिदिन शाम को हमारी मित्र मण्डली बैठा करती थी और हम लोग अनेक प्रकार की गप्पें मारा करते थे। हमारे दो एक दोस्त ऐसी जगहों पर जाया करते थे जहाँ औरतों का गुप्त व्यापार हुआ करता था।

वैसे मैं नारी को खरीदा जाय इसका घोर विरोधी था। लेकिन धीरे-धीरे एक जिज्ञासा भी हुई कि समाज के इस पक्ष को भी थोड़ा देखूँ। एक दिन ऐसा कार्य-क्रम बना। हम लोगों के साथ एक दलाल भी लगा हुआ था। न जाने किन गालियों से मैं गुजरा मुझे पता नहीं चला। दूसरे दिन ही मैं उस गली के सारे रास्ते भूल चुका था। खैर मैं उन गलियों से गुजरा और निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा। वहाँ मैं यह देखकर हतबुद्धि हो गया कि एक १२-१३ वर्षीय बालिका भी प्रस्तुत की गयी है। उस छोटे से सीलनदार घर में मद्धिम रोशनी वाले हल्के बल्ब जल रहे थे। कहीं सफाई नहीं थी, कमरे गन्दे पड़े थे।

मेरे सामने वह बालिका लाई गयी। लेकिन मैं जैसे उसे देख कर काँप उठा और नहीं में सिर हिला दिया खैर मेरे लिए एक दूसरी औरत लाई गयी। वह आई और एक कमरे में हम दोनों गये, ऐसे यह सब बहुत साधारण था। उसके चेहरे पर एक गहन निस्पंदता मुझे दिखी मुझे लगा कि इसके मुर्झाये चेहरे में इस संसार के प्रति बड़ा गहन असन्तोष है। उसकी आँखों की गहराइयों में मैंने देखा लाचारी की ऊँची लहरें उठ रही थीं। मैंने सिगरेट जलाई और पीने लगा, उससे कुछ बातें भी शुरू की। वह वहीं पास की रहने वाली थी।

उसने मुझे गलत या सही शायद अपने बारे में जो बताया वह काफी पीड़ा देने वाला था। उसने मुझे बताया कि उसके पिता तो उसके बचपन में ही मर गये थे, माँ कुछ दिनों जिन्दा थी, वह भी पिताजी के मरने के कुछ दिनों बाद ही इस बारह वर्षीया बालिका को जिसे आपने देखा था पैदा कर मर गयी थी। उसके परिवार में और दूसरा कोई नहीं था जो उनका पालन पोषण करता, उसकी कोई खास पढ़ाई-लिखाई भी नहीं हुई थी। कुछ लोगों ने उसे बहकाना शुरू किया। पहले बड़े आश्वासन दिये और उसके तन तथा यौवन का उपभोग किया। उन्हीं लोगों ने उसे इस हालत में उतरने को बाध्य किया। उसकी छोटी बहन को भी उस दलाल ने ही इस पेशे में ला दिया। जो मिलता है उसमें दलाल का हिस्सा, मकान मालिक का हिस्सा और पता नहीं किस-किस के हिस्से होते हैं। उसके हिस्से में उसकी आय का एक मामूली भाग आता था।

मेरे मन का कोना-कोना इस विवरण को सुनकर एक अजीब दर्द से भर गया था। मैंने उसे पैसे दिये और उठकर चलने लगा। इस पर उसने कहा था 'बाबूजी मैं हराम की कमाई नहीं खा सकती।' घर लौटकर भरी रात में सो नहीं सका था। न जाने

कितने विचारों के घेरे में खोया हुआ था। बार-बार उबकाई सी आ रही थी तथा सिर मारे दर्द के फटा सा पड़ रहा था।

कुछ दिनों तक मैं फिर किसी ऐसी जगह नहीं गया। लेकिन मेरे एक से एक लायक दोस्त थे! एक बार फिर मैं किसी और जगह ले जाया गया; ले क्या जाया गया खुद ही दो मित्रों के साथ जुड़कर चला गया था। पता चला था कि एक बहुत सुन्दरी औरत एक जगह आयी हुई है। मेरे तन की भूख मुझे वहाँ भी खींच ले गयी। वहाँ भी तीन युवतियाँ रहती थीं।

मुझे एक युवती के साथ जाना पड़ा। उसके कमरे में जब मैं गया तो वह मुझे देखकर अकचका गयी। मुझे ऐसा लगा जैसे वह मुझ से पहले से परिचित हो। कुछ क्षणों के भीतर उसके चेहरे पर अनेक प्रकार के भाव घूम-से गये, एक वितृष्णा सी उसके चेहरे पर दौड़ गयी। मैं भीतर-भीतर काफी परीशान हुआ। फिर उसने खुद कहा, 'आइये! तशरीफ रखिये।' मैं पहले बैठा, फिर मैने उससे पूछा 'आप मुझे देखकर कुछ घबड़ाई सी क्यों गई थी।'

उसने कहा था, 'जी हाँ पहले तो मैं निश्चित ही घबड़ा गयी थी।' फिर वह कुछ आगे बताने से इनकार करने लगी किन्तु बहुत जोर देने पर उसने मुझे बताया था, कि आप जैसी शकल वाले एक युवक ने मुझे मेरे घर से निकलने को बाध्य कर दिया था। मैं उस जोश में घर से निकल आयी थी। मुझे याद है एक रात में माँ-बाप और भरे परिवार को छोड़कर उस युवक के साथ बाहर आयी थी, लेकिन मुझे छोड़कर कुछ दिनों बाद वह भाग गया।

उसने मुझसे यह भी बताया था कि उसके प्रेम के बन्धन में, उसके आकर्षण में मैं बिलकुल उलझ गयी थी। मैं उसके

लिये सारी दुनियाँको छोड़ने के लिए तत्पर थी। लेकिन मेरी सारी निष्ठा, मेरी सारी एकाग्रता का मुझे यही परिणाम मिला है। वैसे मुझे आज भी कभी-कभी केवल एक बात के सुख की अनुभूति होती है कि यह सब मैं अपने उस प्रेम के कारण ही कर रही हूँ।' मैंने प्रेम में बलिदान की बड़ी कहानियाँ सुनी हैं। उन कहानियों का रूप, उनमें त्याग का रूप, और होता है। लेकिन प्रेम के लिए, उसके त्याग और बलिदान का यह रूप मैं मानता हूँ बड़ा कुत्सित समझा जाता है लेकिन इसके पीछे उसके मन में प्रेम की बहने वाली उस स्रोतस्विनी का निर्मल जल है जो उसके हर कलुष और कल्मल को धो जाता है। साथ ही मैं अपने तईं उसको पवित्र मानता हूँ।

मुझे आज भी स्मरण है कि उस समय उसकी आँखों में आँसुओं की हलकी परत थी, उस परत में मुझे लगा जैसे ताजमहल डूब गया हो। लगा प्रेम की सबसे बड़ी यादगार पर एक आँधी आयी हो और वह उसमें ढह गया हो। निश्चित ही वह मुझे पवित्र लगी। मुझे लगा कि वह मानसिक ढंग से इस व्यापार से दूर है, इसी दूरी के कारण वह निर्मल है, स्वच्छ है। लेकिन इस युग में इन प्रेम की ढहती हुई मीनारों को देखने के लिये समय किसके पास है? वैसे मुझे जो थोड़ा अवसर मिला है मैं उसके महत्व को, उसके यथार्थ को नहीं समझ पाया हूँ। संभवतः मेरे जिम्मे केवल प्रेम की पीड़ा और कुछ सुनने-जानने को ऐसी ही कथायें हैं, जिनको सुनकर प्रेम से घृणा हो जाय। उसके अलावे मन में कोई दूसरी स्मृति शेष नहीं है। मुझे आज भी वह नहीं भूली है।

× × ×

घर लौटकर आने पर मन में बड़ी पीड़ा थी। लगता था मन के भीतर न जाने क्यों घृणा के स्रोत फूट रहे हों। वह घृणा किसी और के लिये नहीं थी, वरन् अपने पर ही मुझे क्रोध आ रहा था, उन झूठों पर भी, जिन पर शायद संसार अधिक चल रहा है क्रोध आ रहा था। अविश्वास, छल ये सब जीवन की कितनी गहराइयों तक उतर चुके थे, यह ख्याल मुझे और भी बेचैन करता रहा। उस रात किसी तरह मैं सोया भी तो सोकर तब उठा जब दिन के ८ बज चुके थे।

देखा तो सामने सावित्री का एक नौकर खड़ा था। उसने मुझे सूचना दी कि वह आयी हुई है और उसने बुलाया है। मैं जल्दी ही तैयार होकर वह जहाँ टिका करती थी वहाँ गया। वही अन्दाज था, स्मिति पूर्ण हास से उसने मेरा स्वागत किया। उसके पिताजी भी साथ आये थे। हम लोग एक ही क्षेत्र के थे, परिवार के पारिवारिक सम्बन्ध भी हम लोगों के बीच पुश्तों से चले आ रहे थे। निहायत औपचारिक ढंग से हम एक दूसरे से मिले। मैं सावित्री के साथ देर तक बैठा रहा। वह अपना जूड़ा बाँधती जा रही थी, मैं बगल में सोया उसके काले केशों से खेलता जा रहा था। जैसे सितार के तारों पर ऊँगली फेलाने से वातावरण स्वरों से भर जाता है वैसे ही उसके बालों में मेरी उँगलियों के घूमने से मेरा मन किन्हीं अनजाने और अपरिचित स्वरों से भर रहा था।

उसकी आँखें सम्भवतः ऐसा कह रही थीं, जैसे उसे भी सुख मिल रहा हो। वह मुझे देखकर न जाने क्यों कुछ दुखी सी दिखी, उसने मुझे शादी न करने के लिए काफी कोसा, खैर मैंने अपनी मौन तथा निस्पन्द थोड़ी भींगी आँखों से अपने निश्चय को पुनः दृढ़ता से जता दिया। मैंने सोचा कि जब बिना कहे मन की

कोई बात अपने आप दूसरा सुन ले और समझ ले, तो उसके कहने और न कहने में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता।

उस दिन उसकी आँखों में भी मैंने थोड़ा जल देखा था, उसकी आँखें कुछ गीली हो गयी थीं। लम्बे अरसों के बाद हम लोग मिले थे लेकिन हमारे बीच कोई ऐसी दीवार आ गयी थी जिसके कारण हम दोनों मिलने पर प्रायः मौन रहा करते थे। घंटों साथ बैठते थे, लेकिन उन घंटों में प्रायः खामोशी रहती थी। क्योंकि एक भी बात उठती तो उसका असर हृदय पर वैसा ही होता जैसे झील या तालाब के शांत जल में कोई कंकड़ी फेंक देने और उसके बाद लहरों के हिलने से पूरे जल में एक कम्पन हो जाता है।

मैंने लहरों के इस प्रकंप को देखा भी है और उसका अनुभव भी किया है। ये लहरें मेरे हृदय में संभवतः तभी उठी है, जब मेरी और सावित्री की मुलाकात हुई है। उस दिन संभवतः पहिली बार सावित्री ने मुझसे कहा था कि 'यदि हमारी शादी हो गयी होती तो?' मैंने उससे कहा था 'इसकी संभावना कभी थी ही नहीं। हम लोग एक दूसरे की ओर बढ़े अवश्य लेकिन हमारा इस तरह का बढ़ना गलत हुआ। यह गलती न जाने हम दोनों को जीवन के किस किनारे पहुँचायेगी?'

कुछ देर बाद हम दोनों तथा उसके पिता गंगा स्नान के लिये रवाना हुए। काशी में सुबह का गंगा स्नान एक धार्मिक तथा पवित्र अनुष्ठान है, बल्कि इससे मेरे ख्याल से मन में थोड़ी रमणीयता भी आती है। उन दिनों शादियों के दिन थे, क्योंकि कई जोड़े रास्ते से गुजर रहे थे। जिनके आगे-आगे शहनाइयों का स्वर गूँज रहा था तथा पीछे औरतों का झुण्ड लय तथा तन्मयता से गाता चला जा रहा था। ऐसे कई अवसरों पर मेरी और सावित्री की आँखें मिलतीं और गीलीं हो जाती थीं।

वैसे ऐसे अवसरों पर विषाद की मनहूस छाया को अपने से बहुत दूर रहने देना चाहिये। लेकिन सर्वदा ऐसे पवित्र तथा खुशी के अवसरों पर विषाद की एक मनहूस छाया मुझे आपाद ढँक लिया करती थी। क्योंकि यदि मेरा निश्चय दृढ़ था तो मेरे जीवन में कोई वैसा दिन नहीं आने वाला था। मुझे अक्सर लोगों की शादियों में शामिल होने के बाद भीतर ही भीतर ऊब हुई है, घुटन हुई है। शादी की महफिलों में बैठा हूँ, नाच देखा है, गाने सुने हैं, कभी-कभी उन महफिलों में इनाम भी दिये हैं। लेकिन मन बिलकुल उदासी की गहन गहराइयों में भटकता रहा है, मुझसे बहुत दूर!

जब हम तट पर पहुँचे, तो दिन काफी चढ़ आया था। हम तीनों ने गंगा स्नान किया। वैसे उन दिनों में थोड़ा तैर लिया करता था। उस दिन भी मैं लहरों को चीरता काफी आगे निकल गया था। पानी में रहने पर मुझे अक्सर पानी की ओर आँखें उठाने में डर-सा लगता था, लेकिन वह डर क्यों था इसका मुझे आज भी स्पष्ट कारण नहीं मिलता। क्योंकि मैं तो बिलकुल अकेला था, मेरा एकांत और अकेलापन वैसे ही था जैसे नख-लिस्तान में किसी भी प्रकार आँधियों और थपेड़ों से बचा रहकर नीरव और निःसंग केवल एक ताड का वृक्ष खड़ा हो। वैसी ही नीरवता और निस्संगता कभी-कभी मेरे में साहस भी भरती क्योंकि मेरे जीवन का न कोई मूल्य था, न उसकी कोई चिन्ता करने वाला था। सावित्री थी, उस दिन पास भी थी, लेकिन मैं उसे अपनी हर सीमाओं से दूर ही माना करता था। इसलिए मैं जब तैरता तो आँखें मूंदे तेजी से तैरता रहता।

मेरे जीवन के सारे रागों की स्रोतस्विनी वैसे ही सूख गयी थी। कभी-कभी उसमें थोड़ा जल आ जाता तो वह केवल सावित्री के

कारण। सावित्री जब भी मिलती मुझे लगता कि अभी एक तिनके का सहारा है जो मुझे डूबने न देगा, लेकिन किनारे लगने की भी कोई उम्मीद नहीं थी। मात्र जल-धारा में तिनके का सहारा लेकर बराबर बीच में बहता रहना ही मेरे ललाट में था। सावित्री तथा हम लोग उस दिन बहुत जल्दी लौटे थे।

सावित्री ने मुझे बताया कि उसे अपने पति से मिलने कानपुर जाना है। उसके पिता को कुछ घर पर ऐसे आवश्यक कार्य हैं, कि वे उसे पहुँचाने नहीं जा सकते। गाँव से चलते समय ही सावित्री के पिता ने यह तय कर लिया था, कि सावित्री को मैं ही पहुँचा दूँगा। मैंने पहले थोड़ी झिझक अवश्य दिखाई, लेकिन बाद में सावित्री के पिता का आग्रह मैंने मान लिया।

सावित्री एक दिन और रुकी थी, मुझसे मिलने में उसको संभवतः थोड़ा सुख मिलता रहा होगा। क्योंकि उसे भी अपने पुराने दिनों को हरा-ताजा करने में थोड़ी सहायता मिलती रही होगी। सावित्री के साथ दूसरे दिन, कार्यालय के समय से भी थोड़ा समय निकालकर, मैं इधर-उधर टहलता रहा। मैं उसकी छाया की तरह था, प्रायः खामोश निगाहों से जो भी उसका रस मुझे मिलता था वह मैं अवश्य ही पी लेता था, लेकिन तन की बुभुक्षा का कोई ठिकाना नहीं था। वैसे मैं उसकी धारणाओं का पूरा सम्मान किया करता था पर उसका यह कथन, 'तन पति का और मन मेरा' मुझे कुछ जँचता नहीं था।

हो सकता था सावित्री ही सही हो ? लेकिन मनुष्य का तन मैं निश्चित रूप से मानता हूँ, कि उसका नहीं है, उसे तो राख होना है। जिस तन की इतनी गरिमा, जिस तन का इतना वैभव, जिस तन की इतनी लिप्सा है, वह तन राख में ही मिल जाता है। सारे जीवन का अन्य कोई पक्ष सच हो या न हो लेकिन यह सच

सभी सांसारिक सत्यों से ऊँचा है। कभी-कभी सावित्री के उस दर्शन के साथ मैं भी बह जाता था, पर एक बार ही सिर हिलाकर उसे इनकार कर देता था। मुझे सावित्री का वह दर्शन कदापि ठीक नहीं लगता था, लेकिन मैं उसके इस विश्वास की ऊँची दीवार को ढहाना भी नहीं चाहता था। वैसे यह भी हो सकता है कि इस प्रश्न पर मैं उसे न समझा पाता था न वह समझा पाती थी।

वह अपनी कुछ धारणाओं में काफी हठी थी। मिलने में वह मुझसे कोई हिचक नहीं दिखाती थी। वह टहलती थी साथ, घूमती थी साथ, लेकिन उस तन-मन के दर्शन के अलावे वह कभी-कभी यह भी कहती थी, कि उसके पति का उस पर अटूट विश्वास है इसलिये वह उस विश्वास को धोखा नहीं देना चाहती। विश्वास बड़ी चीज होती है, इसलिए मैं उसकी कुछ सीमाओं का सम्मान करता था और यह भी चाहता था कि उसकी सीमाओं को तोड़ूँ, उस अंगूरी लता की गंध और उसके रस में डूबूँ। लेकिन मेरे इन विचारों को कोई ठौर मिल नहीं पाता था।

मुझे आज भी याद है कि मैं सावित्री के साथ जब भी घूमता-टहलता था तो वह मेरे काफी नजदीक होकर चलती थी उससे प्रायः इधर-उधर की बातें हुआ करती थीं।

उस दिन दोपहर के बाद हम दोनों एक बगीचे में पहुँचे। बगीचे में ढलते सूर्य की किरणें एक अजीब तूली से वृक्षों, लताओं, गुल्मों, रंग-विरंगे फूलों को रँग रही थीं। एक ओर गुलाब के फूलों की पंक्तियाँ थीं, तो दूसरी ओर कनेर के सुर्ख लाल फूलों से लदे गददाये वृक्ष खड़े थे। कनेर की लाली भी कितनी शोख थी! हम दोनों काफी देर तक इधर-उधर टहलते रहे, फिर एक पत्थर की चौकी पर हम दोनों बैठे गये।

मैंने उस दिन पहली बार सावित्री से उसके मान और हठ के खिलाफ कहा था कि 'जीवन दूसरी बार मिलेगा या नहीं?

लेकिन तुम्हारे हठ से मैं आजीवन लगता है प्यासा ही रह जाऊँगा। तुम्हारा यह तन मन का जो झूठा विश्वास है वह मुझे पसन्द नहीं।' मैंने यह भी कहा 'मन की शान्ति और उन शान्तिमय क्षणों का जीवन में बड़ा महत्व रहता है।'

वैसे सावित्री से मिलने की मेरी बड़ी अभिलाषा रहा करती थी, उसके मिलने की घड़ी को मैं महीनों बड़ी बेसब्री से इन्तिजार किया करता था। लेकिन मिलने के बाद मैं एक गहन अवसाद में डूब जाया करता था। जैसे आँधी आती है तो वह हर वृक्ष, हर फूल को जोरों से हिला देती है, नगरों का जीवन कुछ क्षणों के लिये अस्त-व्यस्त हो जाया करता है। लेकिन उस आँधी की समाप्ति के बाद बिखराव का रूप देखते ही बनता है। टूटी, डालें, बिखरे पत्ते और फूल, ढीले बिजली के तारों से उस नगर के अवसाद को आदमी भली-भाँति पहिचान सकता है, वैसी ही भावना की आँधी से मेरी हालत भी हो जाया करती थी।

सावित्री मेरे जीवन में जितने क्षणों तक पास रही होगी, मेरे मन में भीतर ही भीतर आँधी उठा करती थी। मैं भीतर ही भीतर टूटा और घुटा करता था। लेकिन सावित्री को न मेरी घुटन से मतलब था, न मेरे टूटते हुये व्यक्तित्व से। वह अपने निश्चय पर दृढ़ थी, वह अपनी सीमा-रेखा से बाहर नहीं निकलना चाहती थी। मैं कर भी क्या सकता था? उसका खुद का निर्णय था, जिसको बदलना भी उसका खुद का ही काम था।

लेकिन उस शाम को हम सूर्य की डूबती किरणों को पकड़ने के लिए साथ ही दौड़े थे। मैंने उस शाम को अपनी उँगलियों से उसके काले केश को सुलझाया था। एक ओर सूरज की लाल तथा ताम्रवर्णी किरणें उसके केश से खेल रही थीं तो दूसरी ओर मेरी उँगलियाँ कभी-कभी उसके गालों पर एकआध हल्का चपत भी लगा

देती थीं। मेरे हृदय की धड़कन के साथ मेरी उँगलियों की चुल-बुलाहट भी बढ़ गयी थी। कुछ हँसी, कुछ ऊपरी खुशी में किसी तरह हम दोनों ने वह शाम बुलाई थी। इसलिये जो कुछ मैं कह सका था वह आँधी के बीच घुमड़ती एक चीख के अतिरिक्त कुछ नहीं था। पर सावित्री डर गयी थी, और उसने लौट चलने की इच्छा व्यक्त की थी और आँधी शान्त हो गयी थी।

सावित्री को दूसरे दिन जाना था। मैंने उस रात फिर नौका-विहार का प्रस्ताव किया, वह भी तैयार हो गयी, पर उसने अपने पिता जी को भी साथ ले लिया। वैसे हम दोनों की इस घनिष्ठता का वास्तविक रूप किसी को मालूम नहीं था। हम दोनों भले रिश्तेदार ही माने जाते थे।

हम गंगा तट पर पहुँचे। चाँदनी रात थी, चाँद उग रहा था। उसकी लाली गंगा के दूसरे तट से लहरों पर एक सीधी रेखा खींच रही थी, लेकिन उस रेखा का रंग प्रतिपल परिवर्तित हो रहा था। धीरे-धीरे उस रेखा का रंग चम्पई हो गया।

हम लोगों ने जल्दी से नाव की ओर घूमने के लिए रवाना हो गये। नाव में पूरी शान्ति थी, काफी देर तक एक दूसरे से किसी ने बातें नहीं कीं। केवल डाँड़ों का स्वर ही सुनाई पड़ता था, थोड़ी देर बाद सावित्री के पिता ने उस पार चलने की इच्छा प्रकट की। फिर उन्होंने स्नान का प्रस्ताव किया, लेकिन मैं और सावित्री दोनों नहाने के लिए प्रस्तुत नहीं थे। सावित्री के पिता नहाने के लिए बिलकुल कृतसंकल्प थे।

नाव उस पार लगी। हम सभी लोग बालू में उतर गये। गर्मी के दिनों में भी बालू ठंढा हो चुका था। ऊपर के बालू के कणों को चाँद की किरणें चमका रही थीं। सावित्री के पिता नहाने गये थे, हम और सावित्री दोनों बालुका राशि में बैठ गये।

सावित्री अधिक सा बालू इकट्ठा करती, उसका एक घर बनाती और उसे गिरा देती। मैंने उससे कहा था 'कि ठीक कर रही हो, घर बना कर उसे गिरा देती हो, जो कुछ तुम कर रही हो वह तुम्हारी मनःस्थिति का एक प्रतिबिम्ब है।' पर वह बिना कुछ उत्तर दिये बार-बार ऐसा ही कर रही थी। फिर न जाने क्या हुआ और वह हँसी। हँस कर उसने कहा, 'बस अब इतना ही मेरी शक्ति में है, जितना मैं बना सकती थी मैंने बनाया, अधिक कुछ बनाना मेरे वश के बाहर है।'

मैंने उसके आँचल को अपनी मुट्ठियों में बाँध लिया, तब उसके गालों पर मेरी हथेलियों ने हल्का स्पर्श किया। मुझे स्मरण है कि उसके गाल अचानक एक दम सुर्ख हो गये थे। मैंने उसके सिर को अपनी ओर खींचा, उसके केश से एक अत्यन्त भीनी गन्ध उठ रही थी। उस रोज उस नीराजन में मैंने उससे प्रायः गिड़गिड़ा कर उसके अधरों के पान की आज्ञा चाही वह थोड़ा झुकी और तब उसने अपना मस्तक! अपने मस्तक का वह भाग जिस पर सुहागिन नारियाँ सिन्दूर की बिन्दी लगाती हैं, मेरे जलते ओठों से सटा दिया। मेरे प्यासे ओठ उस सिन्दूरी मरुस्थल पर छटपटाते रहे, पछाड़ें खाते रहे। उसका मस्तक तनिक और झुका तब मेरा चेहरा उसके काले केशों में अपने को छिपाने का प्रयत्न कर रहा था और उसकी धीमी सिसकियाँ मेरे जर्जर सीने में डूब रही थीं।

थोड़ी देर में नहा-धोकर सावित्री के पिता ने हम लोगों को आवाज लगायी, तो हम दोनों सचेत से हो गये, फिर वैसे ही शान्त जैसे आये थे। नाव हमें थोड़ी देर तक टहलाती रही, फिर दूसरे किनारे जा लगी। हम लोग घर को लौटे, मैं अपने घर आया, सावित्री अपने टिकने के स्थान पर गयी।

रात को मुझे सावित्री को लेकर कानपुर जाना था। हम दोनों लखनऊ होकर जानेवाले थे। मैंने सावित्री से एक बात अवश्य पूछी थी कि 'अगर कहो तो लखनऊ तक ही पहुँचा दूँ ? कानपुर स्टेशन पर तो तुम्हारे पति आ ही जायेंगे !' वह इसके लिये तैयार हो गयी। वैसे सावित्री के पतिदेव को जब भी मैं देखता था तो मुझे न जाने क्यों एक अजीब वितृष्णा सी हुआ करती थी, उनसे मिलना मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता था। सावित्री मेरे इस विचार से लगता था परिचित हो चुकी थी। उसने मुझसे यही कहा था कि 'कानपुर की ट्रेन पर बैठाकर तुम मुक्त हो सकते हो।'

रात को तीसरे दर्जे में भीड़ तो थी फिर भी इतनी जगह मिल ही गयी कि मैं बैठ सकता था और सावित्री सो सकती थी। ट्रेन में में आसानी से बैठ गया, मेरी जाँघ के पास सर रखकर सावित्री सो रही। कभी-कभी मेरी उँगलियाँ उसके केश से खेलने लगती थीं। मेरी उँगलियाँ जब भी उसके केश में उलझतीं तो मुझे बड़ी शांति का अनुभव होता था। वैसे कभी-कभी सावित्री की तनी भौंहें मुझे दिखती थी और मैं समझ जाता था कि वह नाराज हो रही है। पता नहीं वह सचमुच की नाराजी थी या लोक-लज्जा ?

मेरी बाँहों में दर्द सा हो रहा था, उनमें एक खामोश बेचैनी थी। ट्रेन के शीशे से कितने गाँव, कितने वृक्ष और कितने छोटे-छोटे दीपों का उजेला दिख जाया करता था। जिस डिब्बे में मैं बैठा था उसमें भले लोग थे, काफी शांति थी। रास्ते में कहीं-कहीं चाँदनी के निर्मल प्रसार में छोटे-छोटे गड्ढों में पानी दिखता था, उस पानी की लहरों में वृक्षों की छाया सिमटी हुई थी।

मेरी बाहें भी किसी को सिमेटना चाहती थीं। ट्रेन की तेज आवाज से कम मेरी बाँहों की चीख का दर्द नहीं था, लेकिन सारी आवाज निरर्थक थी। मैं एक अजीब स्थिति में पड़ा हुआ था। मेरी जाँघ पर एक तन्वंगी, चम्पई रंगवाली जुन्हाई पड़ी हुई थी, जिसके

माथे पर बालों के गुच्छे जब कभी हवा से हिलते तो ऐसा लगता जैसे पीले तथा लाल रंगवाले कमलों पर भौंरे उड़ रहे हों।

कभी-कभी मैं उन उड़ते भौंरों को पकड़कर उन्हें उनके यथोचित स्थान पर ला देता था। सावित्री बीच में एक बार उठी उसने मेरी ओर गौर से देखा और फिर सो गयी। जब उसने मेरी ओर दृष्टि डाली थी, तब उसकी दृष्टि मुझे बिलकुल ही निर्विकार लगी, उस दृष्टि मे लगा, स्वर्गंगा का पवित्र जल उतर आया हो। वह सो रही थी और मैं बैठे-बैठे केवल उसकी मुखाकृति को देखता जा रहा था। सोते समय भी न जाने क्यों उसकी भौंहों पर बल पड़ जाते था। हो सकता था उसके अवचेतन मन में कहीं मुझसे अरक्षा का भाव रहा हो? क्योकि मुझसे उसके मिलने की एक सीमा नियत हो गयी थी। मैं उस सीमा को कई दृष्टियों से तोड़ना उचित नहीं समझता था वैसे उचित था भी नहीं। किन्तु उस बार हमने जैसे उस सीमा का अन्तिम छोर छू लिया था और उसके अवचेतन मन पर उसका प्रभाव पड़ सकता था।

मैं कदापि नहीं चाहता था कि सावित्री के बिना चाहे, मेरे हाथ उसके किसी भी अंग का स्पर्श करें, वैसे मैं अपलक उसे निहार सकता था। शायद इतना ही अधिकार भी मुझे था, इस पर उसे बिलकुल ही आपत्ति नहीं थी। मैं निश्चल बैठा रहा, ऊँघता रहा, कभी-कभी जब ट्रेन स्टेशनों पर रुकती और वहाँ शोर गुल होता तो मैं चौंक उठता। वैसे ही अर्द्धनिद्रित अवस्था में मैं चला जा रहा था और साथ ही मेरे मन का अंतर्द्वन्द भी चल रहा था।

सावित्री का मेरे जीवन में क्या महत्त्व था यह तो आप जान ही चुके हैं। वैसे मेरे जीवन में जो थोड़ी बहुत हलचल थी, जो थोड़ा बहुत राग था, वह सब केवल सावित्री के कारण था, जितना भी सावित्री से मुझे मिलता वही मेरे लिये पर्याप्त था। पर्याप्त रहा

हो या न रहा हो जब भी वह मुझसे मिला करती थी, मुझमें थोड़ी जान अवश्य आ जाया करती थी। वैसे मैं एक निर्जीव से मन के भीतर आँधी सी अशांति छिपाये इधर-उधर टहला करता था।

उस रात के बीतते क्षणों में मुझे कुछ अजीब सी अनुभूति हो रही थी। सावित्री सामने पड़ी थी! वह सावित्री जिसके कारण मैंने आजीवन शादी नहीं की, फिर भी जिसके तन पर मेरा कोई अधिकार नहीं था। लेकिन मुझे केवल मन की ही आवश्यकता नहीं थी, नारी का तन भी मेरे लिये आवश्यक था। पता नहीं मेरी इस आवश्यकता का उसे आभास था या नहीं? वैसे सुना है नारी पुरुष के मौन को भी बहुत समझती है। वह पुरुष की आँखों की भाषा को तो समझती है, साथ ही वह उसी आँखों की भाषा को समझकर आदमी के हृदय को भी समझने का प्रयास करती है। सावित्री या दूसरी नारियों को देखकर ऐसा आभास मुझे अक्सर हुआ था।

सावित्री के चेहरे पर स्मिति छायी हुई थी। जुन्हाई जैसे पूरे आकाश में छिटक जाती है, वैसे ही सोते समय सावित्री के होंठों पर एक हल्की मुस्कान थी, जो मुझे उतनी ही शांति दे रही थी जितनी चाँदनी के निर्मल प्रसार में मिला करती है। उसके आँचल का एक भाग उसके ललाट को ढँके था, लेकिन ओठ अलग खुले से दिख रहे थे। उसके केशों के गुच्छे कभी-कभी पंखे की हवा में उड़ जाया करते थे, जिन्हें मैं रह-रह कर सँवार दिया करता था।

लेकिन मैं तो सावित्री को अपने नीड़ से काफी दूर पहुँचाने जा रहा था, ट्रेन जितनी तेजी से भाग रही थी उतनी ही तेजी से सावित्री मुझसे दूर जा रही थी। दो दिनों तक का उसका साथ मुझे काफी झकझोर गया था। मैं तो उसका था ही लेकिन वह

निश्चित रूप से मेरी नहीं थी। लेकिन इन विचारों के बावजूद भी मैं सावित्री का साथी था; उसका प्रेमी था। वैसे मैं प्रेम क्या होता है उसे आज तक नहीं जान पाया हूँ, लेकिन सुना है लोग पुरुष नारी के सम्बन्ध को, जिसमें थोड़ी आत्मीयता हो जाय, प्रेम कहते हैं। हमारे उसके बीच कुछ हृदय पक्ष के तन्तु थे, जिन्होंने हमें एक दूसरे के काफी समीप ला रखा था।

सावित्री जब भी करवट बदलती, मेरी ओर आँखें उठाकर अवश्य देख लेती थी। उसकी आँखों में उसकी लाचारी झलकती थी, साथ ही ऐसे भाव भी आते थे जैसे वह और किसी की नहीं वरन् मेरी ही हो।

कभी-कभी वह अपना सर मेरी जाँघ पर रख दिया करती थी, लगता था कि मेरी गोद में उसे काफी शान्ति थी। लेकिन मेरा मन अशान्त था, मैं सोचता था कि मेरी इस स्थिति की कोई दवा नहीं है। 'कहाँ-कहाँ मैं इस सावित्री के पीछे एक ऐसी दौड़ दौड़ता रहूँगा जिसमें कहीं न कहीं दूरी बनी रहेगी। स्वयम् अपने और सावित्री द्वारा बनाई यह दूरी मुझे सदैव खला करेगी।' लगाता था मेरा जीवन कुछ ऐसी घड़ियों को याद संजोकर एक दिन समाप्त हो जायेगा जिसमें मेरे बचपन की एक गम्भीर भूल का तीखापन विष की तरह घुला-मिला रहेगा।

बीच में मैंने उसे जगाकर बैठा दिया था। डिब्बे के प्रायः सभी लोग गहरी निन्द्रा में मग्न थे। मैं काफी देर तक उसकी ओर एक-टक ताकता रहा। वह सर से पाँव तक एक बार सिहर गयी थी लेकिन वह फिर संभल गयी और जैसे बड़े विश्वास के साथ मेरी गोद में सिर रख कर वह फिर सो गयी। धीरे-धीरे सूर्योदय हो रहा था, हम लोग लखनऊ के पास पहुँच गये थे।

ट्रेन लखनऊ के बड़े स्टेशन पर जा लगी, मैंने सामान उतारे।

दूसरे किसी प्लेटफार्म पर कानपुर की गाड़ी लगने में कुछ देर थी, तब तक उसने हाथ मुँह धोये, नाश्ता किया। कानपुर की गाड़ी आ गयी तो मैं वहाँ उसे ट्रेन पर चढ़ाकर अलग हो गया। मुझे उसकी आँखे नम दिखलाई पड़ीं, लगा जैसे सूखी झील अचानक जल के स्रोतों से भर गयी हो!

पता नहीं उस जल में मेरे लिये कितनी ममता और कितना अपनत्व था? लेकिन निःसंदेह वह जल मुझे आत्मबल तथा आत्मविश्वास तो देता ही था। मैं उसे वहाँ स्टेशन पर विदा कर अपनी दूसरी ट्रेन की प्रतीक्षा करने लगा। जिससे मैं लौटता, लौटकर किसी तरह अपना जीवन यापन करता। मैं दूसरे दिन लौट आया था।

× × ×

लौटने पर ज्ञात हुआ कि श्यामा और उसके पतिदेव दोनों आये थे। घोर वितृष्णा से मुँह बिचकाकर मैं अपनी नौकरी पर चला गया, श्यामा के यहाँ नहीं गया। किसी भी हालत में मैं उसके पास नहीं जाना चाहता था। मैं प्रेम या आत्मीयता का झूठा स्वांग रच कर न दूसरे किसी को उलझाना चाहता था न स्वयं उलझना चाहता था। कर्यालय में मेरा मन उस दिन नहीं लगा। एक ओर तो सावित्री को छोड़ कर आया था, पूरे दिन उसकी भरी आँखें मेरी आँखों के सामने आकर झूल जाती थीं, दूसरी ओर श्यामा की घेर-घार थी, जो मन को खट्टा कर देती थी।

शाम को कुछ मित्रों के साथ टहलने निकला। काफी समय तक टहलता रहा। वैसे कभी-कभी अधिक दोस्ती भी अच्छी चीज नहीं होती, लेकिन मेरे लिए सब बराबर था। क्योंकि मुझे कोई भी मनचाही वस्तु मिलने वाली तो थी नहीं, खोना ही खोना था। ऐसी स्थिति में दोस्ती और मित्रता का मेरे लिए कोई मूल्य

नहीं था। जब खोना ही था तो क्यों उस खोने को सीमित किया जाय ? जीवन की अर्जित अमूल्य निधि, जीवन का सार तो मैं खो ही चुका था, मेरा कुछ ऐसा नहीं बचा था जिसके लिये मैं सावधानी बरतता।

उस शाम बल्बों की रोशनी भी मुझे धीमी और निष्प्रभ सी लग रही थी। इच्छा तो यही हो रही थी कि दोस्तों को छोड़कर किसी गहन एकान्त में बैठूँ। कभी-कभी ऐसा भी क्षण आता था जब खुद तबियत करती थी कि कहीं बैठकर रो लूँ, लेकिन वैसा एकान्त मुझे मिलता नहीं था। दर्द और दुःख की जो अजस्र धारा मन के भीतर के किनारों को तोड़ती रहती थी उसे जरा सा भी बाहर आने का अवसर नहीं मिला करता था। अतः मैं मित्रों के साथ मन-मारे टहलता रहता था।

उसी रात को श्यामा का सन्देश मिला कि वह मुझे याद कर रही है। काफी अरसे से मैं श्यामा से नहीं मिला था, मैं चाहता भी नहीं था कि मैं उससे मिलूँ, लेकिन श्यामा मेरी अनुपस्थिति में मेरे घर हो आयी थी। उस रात वैसे मैं इस दुविधा में था कि श्यामा से मिलूँ या न मिलूँ ?

मुझे आज भी स्मरण आता है कि मेरे मन में श्यामा से मिलने के विषय में काफी मत-भेद था, कभी भीतर से एक विचार उठता कि जाकर क्या होगा ? कभी यह बात उठती कि नहीं चलो ! कभी तन की भूख बलवती हो जाती, कभी मन की भावना। दूसरे दिन मैं श्यामा से मिला, मैं ही उसके घर गया था। उसने मुझे अपने घर न आने के काफी उलाहने दिये, कभी पास आकर खड़ी होती, कभी मेरी ऊँगलियों को पकड़कर मरोड़ती, कभी कोई दूसरी शरारत करती रहती। उस दिन भी उसपर मुझे कुछ खास पैसे खर्च करने पड़े थे। वह काफी समय तक मुझसे

अपने पतिदेव की शिकायत भी करती रही। फिर उसने मुझे कुछ आश्वासन देकर वैसे ही अलग कर दिया।

उस दिन किसी प्रकार फिर बोझिल सा मन लिये मैं घर लौट आया था। दूसरे दिन उसने कुछ धोतियाँ आदि मुझसे माँगीं। मैंने प्रतिरोध में उससे कहा कि 'यह बुरा है।' उसने उत्तर में कहा 'सुना है, प्रेम मे बड़े-बड़े त्याग किये जाते है और आप इतना थोड़ा सा त्याग नहीं कर सकते ?' मुझे मन ही मन हँसी आई, प्यार के नाम पर यह सौदा मुझे बिलकुल ही पसन्द नहीं था। मैं प्यार को इतने सस्ते ढंग पर पाने जा रहा था यह सौभाग्य था या दुर्भाग्य इसका मुझे बिलकुल ही पता नहीं चल पाता था। केवल शरीर की एक माँग थी जो बुद्धि पर हावी हो जाती थी।

प्यार को मैं एक बहुत ऊँची वस्तु मानता था। सावित्री ने मुझे अपना तन नहीं दिया था, किन्तु मुझे लगता था कि वह मुझसे प्यार करती है। लेकिन श्यामा की बातें मेरी समझ नहीं आती थीं ? यद्यपि मैं उसकी ओर भी आकृष्ट था, उसके तन के लावण्य का प्रभाव मुझ पर काफी था, श्यामा के शरीर की ओर मैं सर्वदा अतृप्त और भूखी दृष्टि से देखा करता था, लेकिन उस दिन मुझे श्यामा की सभी माँगों को बड़ी निर्ममता से टालना पड़ा।

उस दिन से मेरे मन पर श्यामा का बोझ बढ़ता ही गया। मैंने अपने एक सीधे-सादे मित्र से भी उसकी मुलाकात करा दी थी, वे भी मेरे साथ कभी-कभी उसके घर आया-जाया करते थे। दूसरे दिन फिर मेरे उस मित्र ने ही मुझसे आग्रह किया कि. 'चलो श्यामा के यहाँ चला जाय।' हम दोनों वहाँ पहुँचे, श्यामा के पतिदेव भी मेरे मित्र के परिचित थे। उस दिन श्यामा ने हम दोनों के लिए नाश्ता वगैरह भी बनाया। पर मैंने देखा कि उस दिन खाना श्यामा के पतिदेव बना रहे थे। उस दिन भी श्यामा ने मुझे

बहुत तंग और परेशान किया था, कभी वह जिस कुर्सी पर मैं बैठा था उसे खींचती, तो कभी कोई दूसरी शरारत करती। मैं मन में सोच रहा था कि 'यह मेरे प्रति श्यामा की आसक्ति है ? या मेरे मित्र को अपने ऊपर आसक्त करने के लिए मुझे मुहरा बनाया जा रहा है ?'

मेरे मित्र हमारे सम्बन्धों से थोड़ा बहुत वाकिफ थे, वे यह सब देखकर कुछ परीशान से लग रहे थे। वैसे वे सीधे-सादे सरल स्वभाव के थे, मुझे उनसे किसी प्रकार के नुकसान की आशा न थी। श्यामा ने उनसे यहाँ तक कहा कि 'देखो मैं इन्हें प्यार करती हूँ और ये मुझे एक धोती भी नहीं देते।'

मेरे मित्र तो चले गये पर मैंने बाद में यह सोचा कि श्यामा की बात क्यों टाली जाय ? हम बाजार गये, मैंने उसकी इच्छा पूरी कर दी। लेकिन मेरे मन का कोना-कोना न जाने किस तीखे स्वाद का अनुभव करने लगा। मैं उसके साथ फिर घर नहीं लौटा। मैं अकेले बड़ी परिशानी में इधर-उधर काफी रात गये तक टहलता रहा।

फिर श्यामा का पता कई दिनों तक नही चला। कार्यालय से लौटकर दो एक दिन शाम को मैं उसके घर गया लेकिन वह नहीं मिली, तीसरे दिन शाम को मैं फिर उसके घर गया। तेज हवा के झोंके चल रहे थे, मेरे तन-बदन का रग-रग टूट सा रहा था, उस दिन कुछ थकावट सी थी। लेकिन श्यामा अपने मकान के ही एक दूसरे पड़ोसी के यहाँ बैठी रही। उसके पतिदेव कहीं बाहर गये थे, लेकिन श्यामा नहीं आयी। मैं उसकी प्रतीक्षा बड़ी बेकली से कर रहा था, हर पास आने वाली पग-ध्वनि को मैं उसकी पग-ध्वनि समझता था। लेकिन श्यामा घन्टों बाद तब आयी जब उसके पति आ चुके थे।

में उस दिन थका था। उसके पतिदेव से मैंने कुछ भी बात-चीत नहीं की। मैं आँखें मूंदे अपने जीवन की उस परिस्थिति पर सोच रहा था, वह परिस्थिति जिसमें मुझे अपना कोई नहीं दीख रहा था, मुझे लगता था जैसे सब स्वार्थी हैं। श्यामा एक बार किसी काम से कमरे में घुसी, मैंने उसकी ओर अपनी लाल आखें उठाईं और कह उठा 'कि मैं कुछ अस्वस्थ हूँ।' पर लगा कि उसने कोई ध्यान नहीं दिया। तब मैंने दो शब्द उससे और कहे, मैंने कहा 'लोग स्वार्थी हो गये हैं।' श्यामा ने उत्तर दिया था, 'हाँ आप ही तो निःस्वार्थ हैं!' इस पर मैंने पुनः कहा था कि 'हाँ इसका निर्णय तो सचमुच मुश्किल है।'

इसके बाद उसने मेरी ओर देखा भी नहीं और बाहर निकल गयी। पता नहीं मेरा स्वार्थ उससे कितना था? लेकिन था अवश्य इस तथ्य से मैं कैसे इन्कार कर सकता था? मैं उसी तरह आँखें मूँदें पडा रहा। मुझे अपनी लाचारी और बेबसी पर खुद तरस आ रहा था। मैं अपने मन में सोच रहा था कि प्रायः वेश्याओं के बारे में सुना जाता है कि वे अपने प्रेमियों का धन चूस लेने के बाद ऐसे ही दो-टूक जवाब दे देती हैं। 'श्यामा-गृहिणी-वेश्या' मैं मन ही मन बुदबुदाया। थोड़ी देर बाद मैं उठा और धीरे से वहाँ से रवाना हो गया। घर जाकर सो गया और जब सोकर उठा तो पूर्ण स्वस्थ्य था।

दूसरे दिन शाम को मैं उसके यहाँ नहीं गया, लेकिन किसी से पता चला था कि वह अपने पतिदेव के किसी मित्र के साथ घूमने निकली थी। खैर मैंने अपने चन्द मित्रों के बीच शाम अच्छी तरह गुजारी, लेकिन रात को मुझे नींद नहीं आयी। मैं बड़ी रात तक श्यामा के बारे में सोचता रहा, 'श्यामा का इस प्रकार का व्यवहार मेरी समझ में नहीं आता था? मैंने स्वयं उसको अपने पतिदेव के सभी मित्रों के साथ खुला व्यवहार करते देखा था,

सभी के साथ वह हँसकर बातें करती थी। लगता था जैसे जितने लोग उसके पतिदेव से मिलने आते थे उन सब की घनिष्ठता पति से अधिक पत्नी से ही है।

श्यामा सभी को अपनी चंचलता, अपने बचे खुचे लावण्य से मोहित करने का उपाय करती थी। मुझे लगता था कि उसका मन कहीं भी एक जगह केन्द्रित नहीं हो सकता। उसका मन संभवतः जितने भी पुरुष उससे मिले होंगे सभी पर आया होगा, किसी ने उसे पसन्द किया होगा, किसी ने नहीं। श्यामा के पतिदेव भी खूब थे? उन्हें कभी-कभी पत्नी की गाली भी खानी पड़ती थी। मिट्टी के खिलौने से अधिक उनका कोई अस्तित्व नहीं था। हाँ लड़का खेलाना, भोजन बनाना, ये सभी कार्य उनके जिम्मे थे। एक रूपवती स्त्री के सामने एक कमजोर आदमी की स्थिति गीदड से भी बदतर हो जाती है, इस सत्य का अनुभव मुझको श्यामा की दोस्ती से ही हुआ था।

दूसरे दिन संभवतः रविवार का दिन था, मैं दस बजे सुबह श्यामा के यहाँ पुनः गया था। वैसे मैं वहाँ जाना नहीं चाहता था, किन्तु मेरे पाँव उसके घर की ओर मुड़ ही गये। श्यामा घर में अकेली बैठी थी, जाते ही उसने मुझ से कहा कि 'कल शाम तो मुझे भी काफी ज्वर था।' मैंने उसका झूठ पकड़ लिया था। मैंने पूछा था कि 'तुम तो कल शाम किसी के साथ टहलने निकली थीं?' इस प्रकार झूठ के पकड़े जाने के करण वह कुछ सहम सी गयी। लेकिन बोली 'हाँ कुछ ऐसी जगह जाना था जहाँ के लिये मैं बुखार में भी जा सकती थी।' वह किसी भी शर्त पर मुझ से संभवतः ज्यादा बड़ा सौदा करना चाहती थी और मैं भी संभवतः बार-बार उसके यहाँ अपना पुराना पावना ही वसूलने जाता था। सच यह था कि मैं और श्यामा दोनों एक ही से विकृत थे। इधर मैं सौदे से उब चुका था, तन को क्रय करने

की क्षमता की बात नहीं थी, बात थी मन के मिलने की और श्यामा के इस झूठे आचरण ने मुझे काफी हिला दिया था। इसलिये मैं वहाँ से उस दिन अचानक बहुत जल्दी उठ गया, तो उसे कुछ आश्चर्य भी हुआ। उसने पूछा, 'अरे चल दिये ?'

लौटते समय राह में मैंने दृढ़ता पूर्वक यह निश्चय किया, कि अब श्यामा से मेरा मिलना-जुलना कभी न होगा और शायद उसके बाद मैं उससे कभी नहीं मिला। कभी-कभी तबियत करती थी कि 'चलूँ', लेकिन फिर अपने कलेजे पर मुझे पत्थर रखना ही पड़ता था।

हाँ कभी-कभी श्यामा को मैं औरों के साथ टहलते देख लिया करता था और नजरें बचाकर उन लोगों से किसी तरह दूर चला जाया करता था। धीरे-धीरे नारी के सम्पर्क में आने से ही मुझे वितृष्ण होती गयी। एक तो नये सम्पर्क बड़े परिश्रम से बना करते थे, बनने के बाद ऐसी विचित्र परिस्थितियों का पैदा होना मुझे बड़ा अरुचिकर सा लगा।

अब विचार करने पर मैं श्यामा का अधिक दोष नहीं मानता। न जाने किन परिस्थितियों ने उसे ऐसे अविश्वासजनक आचरण की शरण में पहुँचाया था ? श्यामा ने मुझसे एक बार कहा था कि उसे खुद पर भी कभी-कभी घृणा होती है, लेकिन वह लाचार है, जीवन के रस की तलाश में वह भटकती रहती है। पता नहीं उसे वह रस कभी मिला या नहीं ? या उस रस की उपलब्धि से उसे संतोष हुआ या नहीं ?

सच तो यह है कि उस समय श्यामा और मैं दोनों ही मानसिक रूप में रुग्ण थे, पर श्यामा से मुझे काफी आशायें हो गयी थीं। मैं सोचता था कि मेरे जीवन में नारी की जो कमी है उसे श्यामा पूरा करेगी। यह बात नहीं थी कि श्यामा से न मिलने का मैंने जो

निश्चय लिया था उससे मैं कोई बहुत सुखी था ? हाँ सुख इतना अवश्य था कि मैं किसी के धोखे में न उलझ पाऊँगा। लेकिन मेरे जीवन के मरुस्थल में जो एक छोटा सा सही या गलत नखलिस्तान आ गया था, उसे मैंने मिटा डाला था। इसके बाद तो केवल मरुस्थल ही मेरे जीवन में बचा रहा, जिसमें मुझे इधर-उधर भटकना था।

मैं अपनी शक्ति को किसी और दिशा में नियोजित करने की सोचने लगा। श्यामाओं की तलाश में भटकना, उन्हें पाने के बाद उन्हें खोना, यह सब एक बड़ी प्रवचना के अलावे कुछ भी नहीं लग रहा था। इधर जब से श्यामा से दोस्ती हुई थी मेरा लिखना-पढ़ना सब छूट गया था। जब भी पुस्तक उठाता श्यामा की याद आ जाया करती थी, श्यामा की हँसी कानों में गूंजने लगती थी। श्यामा का लावण्य, उसके शरीर की फिसलन, वह चिकनापन सभी मुझे घेरे रहते थे। ऐसे ही ख्यालों में मैं डूबता और भटकता रहता था।

× × ×

मित्र ! कभी-कभी मेरे मन में यह भावना आती थी कि नारी के सम्पर्क से यदि कोई सुख पुरुष को मिलता है तो वह मेरे लिये निश्चित ही नहीं बना है। यदि वह सुख मेरे लिये भी होता तो सावित्री मेरी हुई होती ? लेकिन ऐसा हुआ नहीं। श्यामा मेरे जीवन में ऐसे ही आयी थी जैसे तालाब की काई में किसी चीज के पड़ने से एक हल्का कंप हुआ हो और समाप्त हो गया हो। मैं सोचने लगा कि अब ऐसा कोई कंप न आये यही अच्छा है। मैं नारी-मात्र से दूर रहने की कोशिश करने लगा। जीवन का चरम सत्य मुझे यही लगा कि मन पर फैली काई को हटा दिया जाय।

मन को मोड़कर साहित्य-सेवा में धँसने लगा, असंतुष्ट मन को

कहीं से संतोष पहुँचे इसके प्रयास में जुट गया। वह प्रयास था पढ़ने और लिखने का। जीवन को नयी दृष्टि से देखने का भी प्रयास करने लगा। नारी-पुरुष के सम्बन्धों के अलावे भी जीवन में कुछ अन्य महत्व-पूर्ण बातें होती हैं, इसका मुझे धीरे-धीरे अहसास होने लगा। जितना ही पढ़ता था, जितना ही लिखता था, मन को उतनी ही शांति मिलती थी। कहीं कोई अपनापन था ही नहीं, केवल पुस्तकें, कलम और कागज ही अपने थे, मैं इनमें ही पूर्ण अपनत्व पाता था।

देखिये आज भी मेरे साहित्य को लोग प्रेम से पढ़ते हैं और सम्भवतः थोड़ा आदर भी करते हैं। लेकिन मेरी हँसी प्रायः हर जगह उड़ा दी जाती है। मैं जानता हूँ कि यह युग ऐश्वर्य और शक्ति का है, वैभव का है। लेकिन जीवन की अन्तिम छोर पर पहुँच कर भी मैं उसे प्राप्त न कर सका, कभी पाने की इच्छा भी नहीं हुई। क्योंकि बराबर मन में प्रश्न उठता था कि 'यह सब क्यों पाया जाय ? किसके लिये पाया जाय ?'

वैसे आजकल के बहुजन इस ऐश्वर्य, वैभव और शक्ति से वन्चित हैं, मैं भी उन्हीं में हूँ। कभी मेरे मन में यह भाव ही नहीं उपजा कि मैं भी पैसे वाला बनूँ। देखिये न, कितने साहित्यिक भी आजकल दुकानें खोलकर बैठ गये हैं, व्यापारी हो गये हैं। उनका साहित्य-सर्जन या साहित्य-साधना उनके लिए मूल कार्य नहीं है, वरन् अर्थ ही उनके लिये मूल है।

उस दिन हमारे नगर में श्री वसवाल का स्वागत था। आपने सुना होगा कि उनका जीवन एक क्रान्तिकारी का था; आजकल वे धनवान हैं। पता नहीं क्रान्ति की भावन आकर पैसों के लोभ पर कैसे टिकी ? जीवन-दर्शन का यह गहन विभेद मेरी समझ में नहीं आता ? शायद वे भूल गये कि अभी भी देश के बहुजन को पूरा पेट खाना नहीं मिलता, लेकिन अतीत के उस क्रान्तिकारी साहित्य-

कार को शायद वह सब भूल गया है जीवन में भी कृतियों में भी। उस दिन आपने उनका भाषण सुना होगा, कितने प्रगतिशील थे? देश के लोगों के प्रति उनमें कितना प्रेम था! लेकिन आज वे खुद शोषण करते हैं।

आज साहित्य में भी ऐसे लोगों का सम्मान है, उन्हें सभी इज्जत की दृष्टि से देखते हैं। एक मुझ जैसे सुखों से विमुख लोग जिनका जीवन एकान्तसाधना में बीता, जीवन से संघर्षों में रत हैं, पर सम्मान करने वाला कोई नहीं है। वैसे मैं अपनी रचनाओं से थोड़ा सन्तुष्ट हूँ, लेकिन पूरी तरह संतुष्ट नहीं हुआ हूँ।

आपको मैं किधर खींच ले गया? हाँ तो मैंने उन दिनों श्यामा से बिलकुल अपने को अलग रखा था, नारी मात्र से दूर रहने लगा था। कुछ दिनों बाद मैं बहुत सख्त बीमार पड़ा, मेरी सेवा शुश्रुषा करने वाला कोई न था। मैंने घर वालों को तकलीफ देना उचित नहीं समझा, मैं किसी का अहसान नहीं लेना चाहता था, लेकिन मेरी बीमारी बढ़ती ही गयी। अपने मन और मस्तिष्क को संयत और संतुलिन रखने के लिये मैंने रात-रात भर लिखने-पढ़ने में अपने को इतना व्यस्त रखा, कि शरीर उस श्रम को सह नहीं सका और मैं एक लम्ब अर्से के लिए बीमार हो गया। उन दिनों के गहन एकान्त और अपने नितान्त अकेले पन में मैं बीमारी के साथ संघर्ष कर रहा था। कठिन-से-कठिन दिनों में भी मुझे रोना नहीं आया था, लेकिन उन दिनों प्रायः मेरी आँखें डबडबा जाया करती थीं, प्रायः अपनी लाचारी पर रो लेता था। दो एक मित्र कभी आते, उनकी सहानुभूति मरुस्थल में हुई वर्षा की तरह ही थी, उससे मेरे जीवन पर कोई असर नहीं पड़ता था। कभी-कभी एकान्त में बैठकर सोचता कि सावित्री होती और मैं उसकी गोद में मुँह छिपा कर इस लाचारी पर रोता, लेकिन वह संभव नहीं था। कहीं सहानुभूति नहीं, कहीं

प्रेम नहीं। खुद दवा के लिये अकेले निकलता, डाक्टर के यहाँ जाने पर रोगियों के मेले में खो जाता मेरा स्वास्थ्य काफी गिर गया। मिर्जा गालिब की दो लाइनें अक्सर याद आया करती थीं—

किससे महरूबिये किस्मत की शिकायत कीजे
हमने चाहा भी कि मर जाँय सो वह भी न हुआ।

अचमुच चाहता था कि जीवित न रहूँ, लेकिन जीवन और मृत्यु दोनों की लालसा से मैं उन दिनों संघर्ष कर रहा था। कभी जब मैं शीशे में अपने को देखता तो मैं खुद ही भयभीत हो जाता था। शरीर का रूखापन, धँसी आँखें, बढ़े बाल, कद तो अपना नाटा हई है। उस समय मैंने सोचा, 'खैर एक बात यह अच्छी हो गयी, कि मेरी ओर अब किसी नारी की नजर नहीं उठेगी! एक नारी जैसी वस्तु से मुझे मुक्ति मिली।'

महीनों लगे ठीक होने में, प्रतिदिन डाक्टरों के पास जाना पड़ता। वैसे पैसे की कोई खास कठिनाई नहीं पड़ती थी किसी तरह काम चल ही जाता था, लेकिन स्वस्थ होने पर ऐसा लगा जैसे अब मेरा शरीर वह नहीं रहा जो पहले था। एक बिलकुल अपरिचित रूप था, बीमारी के पहले और बीमारी के बाद दो शक्लें। खैर एक बात से मैं निश्चिन्त हो गया था कि अब कभी नारी का सम्पर्क नहीं मिलेगा।

× × ×

ठीक होने पर मैंने पुनः अपने को लिखने-पढ़ने की ओर ही लगाया, शाम को घूमता अवश्य था। पूरी बीमारी के बीच मैंने सावित्री को खबर नहीं दी। यह भी चाहता था कि मैं उसे भी बिलकुल भूल जाऊँ, अब मेरा उसका जोड़ने वाला कोई सूत्र न रहे।

पर सूत्र मिलना था और वह मिल गया। उन्हीं दिनों सावित्री का एक पत्र मिला, पत्र उसके पहले के पत्रों से कुछ बड़ा था, बहुत सी इधर-उधर की बातों के बाद, एक-आध पंक्तियाँ लिख कर काट दी गयी थीं। इसके बाद जैसे काँपती हुयी कलम से उसने लिखा था कि 'उसके घर में एक नन्हाँ-सा मेहमान आने वाला है। वह निश्चित ही बेटा होगा और उसका जो नाम रखा जायगा वह मेरा नाम होगा।' इसके बाद की दो पंक्तियाँ खूब गाढ़ी स्याही से काटी गई थीं, ताकि पढ़ी न जा सकें, उसने लिखा था 'कि वह उसे माँ कहना सिखाने से पहले मामा कहना सिखायेगी', और अंत में ईश्वर से प्रार्थना की गयी थी कि 'उसका रूप रंग, उसकी आकृति, मेरी तरह की ही हो।'

मेरी तरह की आकृति ! मेरा रूप-रंग ! मैंने आइने में अपना चेहरा देखा, 'भगवान न करे किसी बच्चे की आकृति इस कंकाल सरीखी हो ?'

पत्र समाप्त कर लेने के बाद मेरा पूरा शरीर थर-थर काँपने लगा। लगा जैसे जो बीमारी इतनी कठिनाई से छूटी है वह उस कँप-कँपी के साथ फिर उभड़ आवेगी। मैं नहीं चाहता था कि मेरे उस समय के रूप को कोई परिचित नारी विशेष कर सावित्री देख पावे ? वह मेरे उस घर को जानती थी, इसलिये मैंने बीमारी के तत्काल बाद ही अपना वह घर बदल दिया। चाहता तो था कि शहर ही बदल दूँ, लेकिन लगी-लगायी नौकरी कौन छोड़ता ? वही तो जीने का एक सहारा थी, उसे छोड़ने के लिए मैं बिलकुल तैयार नहीं था। जो दो कमरे लिये वह शहर के भीतरी भाग में थे पर स्थान अधिक था एकान्त के क्षणों में हमेशा सावित्री की याद आ जाया करती थी, उसकी याद के आने मात्र से मुझे थोड़ा संतोष मिल जाया करता था। लगता जैसे उसकी याद स्वयं उसके हाथ हों

जो मुझे सहलाते हों, स्पर्श करते हों, और लगता था जैसे उसकी आँखें मुझे देखकर नम हो गयी हों। कभी-कभी मुझे अनुभव होता जैसे वे हाथ छोटे होते-होते एक नवजात शिशु के हाथ बन गये हों! उन स्वच्छ नेत्रों और कोमल हाथों के स्पर्श की काल्पनिक अनुभूति के नीचे मैं सिहर सा उठता। इसी तरह दिन बीतते रहे, श्यामा का वैसे मेरे जीवन में कोई महत्व नहीं था। वैसे मैं स्त्री जाति से अपने को इसलिये भी दूर रखने लगा कि कहीं कोई श्यामा मुझे पुनः न मिल जाये तथा मेरे मन को तिक्त और रिक्त न कर जाये। जीवन एक साधारण राह पर चलता रहा।

हाँ उस समय की लिखी गई मेरी पुस्तकों का सम्मान भी हुआ। उसके बाद जो पुस्तकें मैंने लिखीं उनकी लोगों ने तारीफ की, मेरी पुस्तकों की आलोचनायें प्रकाशित हुईं। लोगों का विचार था कि मेरे साहित्य में मस्तिष्क की भाषा नहीं, वरन् हृदय की भाषा पायी जाती है। लोगों की राय थी कि सूखे से सूखे विषय को भी मेरी भाषा रसमय परिधान देने में समर्थ है। मुझे बाहर के आमन्त्रण भी आने लगे, साहित्यिक जगत में मेरा सम्मान बढ़ने लगा। लेकिन मेरे जीवन की निराशा जरा भी न घटी। इन आमन्त्रणों, प्रशंसाओं से मुझे जीने के लिये थोड़ा सम्बल अवश्य मिलता लेकिन मेरे मन की दिशाओं में व्याप्त निराशा और अकेलापन भीतर ही भीतर मुझे समाप्त सा कर रहे थे, मुझे खाये जा रहे थे।

आप तो जानते ही हैं कि इन दिनों पैसे और कुर्सी इन्हीं दो बातों का सच्चा सम्मान है, पता नहीं चलता कि आदमी कहाँ बह गया है। वह अपने संकुचित स्वार्थों के लिए कुर्सीवालों तथा पैसेवालों के सामने निहायत नीचा बन जाता है। इस तरह छोटा बन जाता है जिसका कोई ठिकाना नहीं। इस नगर में भी बड़े-बड़े साहित्यिक मठाधीश हैं। मैं जानता हूँ कि उनके साहित्य में कोई दम नहीं

हैं। उनके मरने के बाद शायद लोगों को उनके मूल्यांकन की आवश्यकता भी न पड़ेगी। लेकिन मेरे जैसे व्यक्ति को भी अपने जीवन-बसर के लिये उनके पास जाना पड़ता, उनके सामने सर झुकाना पड़ता और उनकी अपमान तथा अवमानना भरी नजरों का बोझ दिल पर लादे उनके घरों से निकलना पड़ता। ये साहित्यकार अपने को इन्सानियत का ठेकेदार, कला, का ठेकेदार समझते हैं। लेकिन फिरका परस्ती इनके रक्त में भरी हुई है। आप मुझसे सहमत हैं? हाँ आप तो इन लोगों को जानते ही हैं।

अब देखिये मेरे घर के सामने एक प्रोफेसर साहब रहते हैं। प्रोफेसर क्या अभी लेक्चरर नियुक्त हुए हैं। मेरा कमरा और उनका ड्राइंग रूप आमने-सामने है।

जब भी वे विश्वविद्यालय से लौटते हैं, उनके पास कोई न कोई छात्र-छात्रा पुस्तक लिये अवश्य पहुँच जाता है। अपने उसी अध्ययन के कमरे से मैं उन लोगों के पठन-पाठन की प्रक्रियाओं को देखता रहता हूँ। एक दिन तो शाम को कमरे के द्वार बन्द हो गये, कोई छात्रा उनके पास थी। दोनों की उच्छल हँसी मैं सुनता रहा। सचमुच वह हँसी मेरे लिये ईर्ष्या का कारण तो थी लेकिन इस पर मुझे हँसी आती, कि नम्बर पाने के मोह, डिग्री और अच्छी डिग्री पाने के मोह का क्या-क्या मूल्य चुकाना पड़ सकता है? प्रेम तो उनमें था नहीं।

× × ×

देखिये लगता है हम लोगों ने सारी रात यहीं बिता दी। वैसे जीवन में अनेक रातें मैंने ऐसे ही गुजारी है, टहलते-घूमते। मेरे जलते हुये अतृप्त मन ने संतोष तथा आत्म-तोष की सदा तलाश की, लेकिन जैसा तिलिस्मी किताबों में होता है कि कोई

रानी है, जब नायक उसके जरा नजदीक पहुँच गया तो वह अदृश्य हो गयी। ठीक वैसे ही मैंने भी जब कभी संतोष या तृप्ति की सीमा के पास अपने को पाया तभी वह सीमा मुझसे बहुत दूर हो गयी। मैं फिर उसकी तलाश में भटका और भटकता ही रहा। जिन्दगी थी कि घटिया तिलिस्मी किताब बन गई थी।

सावित्री ही थी! उसने सदा मुझे अन्तर्मन दिया। वह मेरी आवश्यकता को काफी महसूस किया करती थी। लेकिन वह न जाने किन आदर्शों या किन मान्यताओं के चक्कर में पड़कर कभी भी मेरे नजदीक न आ सकी। मुझे याद आता है कि जब भी मैं बाहर सोया हूँ, चाँदनी रात रही है या अंधेरी रात, सावित्री का स्मरण मुझे अनेक रूपों में होता रहा हैं। मैं उँगलियों पर उससे हुई पहिचान के क्षणों को गिना करता था, गिनकर भीतर ही भीतर टूट जाया करता था। मन वैसे टूटता था जैसे भूचाल आये और धरती की अनेक भीतरी तहों में दरारें पड़ जाँय।

सावित्री जब मिला करती थी, तब उसकी आँखों की गहराइयों में मैं अपने लिए एक ममता पाता था, अपने लिये उसकी आँखों में एक सघन आत्मीयता पाता था, उसकी झील सी गहरी आँखों में मेरे लिये दर्द रहता था। मुझे स्मरण है कि जब उसे मेरे इस प्रकार के रात-रात भर घूमने-टहलने की खबर मिली तब उसने मुझे से कहा था कि 'इसके जो कारण हैं उन्हें मैं जानती हूँ, लेकिन अब मैं कर भी क्या सकती हूँ?' न जाने क्यों यह कहने को बाद ही उसकी आँखें नम हो गयी थीं। उसकी आँखों में एक ऐसी लाचारी तथा विवशता की लहरें होती थीं जिसमें मैं खुद डूब जाया करता था। उसके इन्हीं भावों ने मुझमें एक साहस सा भरा था। पिछली बार उससे मिलने पर मैं जैसे उसकी बनाई सीमा-रेखा के पास पहुँच गया था। उससे अलग करने के लिए ही नियति ने और साथ ही सावित्री ने एक ऐसी रेखा खींच दी

जिसे छूने से भी भस्म हो जाना होगा ! वह एक लक्ष्मण रेखा थी ! उस लक्ष्मण रेखा ने कहीं हम दोनों को अलग कर रक्खा था, हम लोगों मे विभाजन की एक इतनी बड़ी दीवार थी जहाँ हम मिलकर भी प्रायः बहुत दूर थे।

बचपन में दादी ने एक कहानी सुनायी थी, जिसमें एक बालक ने साँप को मामा कहा था और साँप अपनी दंश करने की आदत छोड़ बैठा था। क्या सावित्री के लिए मेरा प्यार 'सर्पदंश' था ? वैसे सावित्री के सीधे-सादे पत्र सदा आया करते थे। अक्सर सीधे-सादे पत्रों में कहीं मन को छूने वाली, सान्त्वना देने वाली एकाध लाइनें अवश्य हुआ करती थी। अक्सर पत्रों में 'तुम्हारी याद आ ही जाती है, पता नहीं क्यों चाहती हूँ तुमको भूल जाऊँ लेकिन भूल नहीं पाती। भूलना चाहती हूँ इसके भी कई कारण है। कोई सज्जन आये थे, वे मेरे पतिदेव से बातें कर रहे थे जिन्हें मैंने सुना था। वे कह रहे थे कि जब कभी बहुत दूर किसी को कोई याद करता है तो ऐसा होता है कि दूसरा भी उसी समय उसे याद करता है। इसी लिए भूलना चाहती हूँ कि न मैं कभी तुम्हें याद करूँ न तुम मुझे, लेकिन न जाने क्यों तुम्हारा उदास, खोया हुआ चेहरा मेरे मन से ही नहीं उतर पाता।' अपने स्वास्थ्य के बारे में भी उसने लिखा था, 'कि भोजन नहीं पचता तथा दुबली हो गयी हूँ आदि...' सावित्री के सभी पत्र मेरे आफिस के पते पर आते थे, इसलिये मुझे मिल जाया करते थे।

जहाँ तक मुझे स्मरण आता है कि इतने बड़े पत्र उसने संभवतः जीवन में दो एक बार ही मुझे लिखे हों ? क्योंकि उस समय की उसकी मानसिक स्थिति विचित्र-सी रही होगी ? एक ओर मातृत्व की कल्पना उसे आन्दोलित करती होगी, दूसरी ओर प्रसव का भय उसे अभिभूत किये रहता होगा। जिसके फलस्वरूप उसकी स्मृतियाँ उसे

कुरेदती रहती होंगी और परिणामस्वरूप उसके पत्र बड़े होते थे। उस समय मैं इस तरह विचार नहीं कर सकता था, इसलिये उस समय के उसके किसी भी पत्र का उत्तर मैंने नहीं दिया था। मुझे ऐसा लगता कि वह मुझे धोखा दे रही है, वह मेरी नहीं है। वह सुखी है, समृद्ध है उसके घर पैसे भी हैं, हो सकता है इन सबके बीच कहीं उसका कमल की पंखुरियों जैसा खिला दिल संकुचित न हो गया हो, मुरझा न गया हो ? मुझे लगता कि वह मेरे साथ खेल रही है, एक ऐसा खेल जो न कायदे से मरने दे, न कायदे से जीने दे। इसी उलझन को बढ़ाने के लिए वह अपने पत्र भेज दिया करती है, या स्वयं शहर घूमने के बहाने मुझसे मिलने चली आती है। मैं सोचता कि उसके दूसरे खेल खतम हो चुके हैं, या कि वह हार चुकी है, इसलिए यह मामा-भानजे का नया खेल प्रारम्भ हुआ है जिसका साथ कुदरत भी दे रही है।

कभी-कभी मुझे ऐसा लगता जैसे मुझसे बातें करके या मुझे अपने सुन्दर तन का सामीप्य देकर वह मुझपर अहसान कर रही है। ऐसा ख्याल आते ही मेरे रोम-रोम में अपने प्रति एक गहन अनास्था उठा करती थी, जिसके बोझ से मैं बेहद दब जाया करता था। उस समय के लिखे दो एक पत्रों में उसने मुझे अपने घर यानी अपने पतिदेव के घर बुलाया था जबकि वह जानती थी कि मैं उसके पतिको पसन्द नहीं करता था।

मुझे स्मरण है कि उस समय उसका एक पत्र आया था जिसमें उसने लिखा था-'इन दिनों तुम मुझे अक्सर याद आते हो, कभी-कभी सपनों में भी दीख जाते हो। न जाने क्यों तुम्हारी याद आते ही मैं सिहर जाती हूँ। तुम्हारी याचना भरी आंखें प्रायः मुझे घूरती-सी लगती है। मैं उदास हो जाती हूँ, लेकिन तुम जानते हो कि मैं अपने पति के अटूट विश्वास को जो मेरे लिए है, तोड़ना नहीं चाहती।

वैसे इधर आओ और देखो कि इस समय मेरे घर के लोग मेरे स्वास्थ्य का कितना ध्यान रख रहे हैं इधर तुम्हें देखे बहुत दिन हुए, एक बार इधर आओ !'

बातों से तो मैं ऊब गया था। उन दिनों मैं अपने आपको नारी से काफी अलग कर चुका था। वंचना की राहों में एक दिन भी भटकने की इच्छा मुझे नहीं थी। मेरी दोस्ती सुनसानों, बियाबानों या पुस्तक-कलम और कागज तक सीमित होकर रह गयी थी। जीवन की एक गहन असफलता का बहुत बड़ा बोझ मेरे हृदय पर था, उसे ढोना मेरे लिए बड़ा काम था, पर मन को यह सन्तोष भी था कि कहीं कोई है, जो मुझे स्मरण कर लेती है, कभी एकाध क्षण के किए ही सही, मेरी चिन्ता भी कर लिया करती है। कभी-कभी तो मैं एक नवजात शिशु की भी कल्पना कर लेता था, जो सावित्री की गोद की शोभा बनने वाला था। वह चित्र जब भी कल्पना में झूलता मैं सिर झटककर उससे इनकार करने का प्रयत्न करता। मेरे जीवन की शुष्कता और नीरसता मेरे व्यक्तित्व पर इस तरह छाती गयी कि मैं ताड़ के वृक्ष की तरह हो गया, जिसके पत्तों में न कोई छाया होती है, न उसमें रस होता है। ताड़ के पेड़ से थोड़ा रस अवश्य निकलता है, जो आतप से उफन कर नशीला बन जाता है। सम्भवतः वैसी ही मदिरा की वजह से मैं भी खड़ा हूँ, नहीं तो कब का झुलस कर समाप्त हो गया होता।

वाह खूब कहा आपने ! 'मेरा राजकीय सम्मान, राजकीय पुरस्कार !' यह सब धोखा है। मनुष्य इन धोखों के व्यामोह से जीवित अवश्य रहता है, उसमें वहम अवश्य आ जाता है, लेकिन इनसे मनुष्य के मन को सच्ची तृप्ति नहीं मिल पाती। अक्सर पिछले कई वर्षों से मेरी रचनाओं को राजकीय सम्मान मिला है, मेरा जीवन इन पुरस्कारों या राजकीय सम्मानों से थोड़ा समाज में जीने लायक

बनता है, पर इनका सहारा मेरे मन को नहीं मिल पाता। मैं अपने को बिलकुल अकेला पाता हूँ, निस्सहाय पाता हूँ।

एकांत में बैठकर सदा यही सोचता हूँ और गालिब की ये पंक्तियाँ मुझे स्मरण आने लगती हैं—

कहर हो या बला हो, जो भी हो
काश कि तुम मेरे लिए होते
मेरी किस्मत में गम गर इतना था
दिल भी या रब कई दिये होते

लेकिन मुझे जीवन की बदकिस्मती को झेलने के लिए केवल एक दिल मिला और वही एक दिल जीवन की तमाम असफलताओं, लाचारियों तथा दुःखों का बोझ रात-दिन ढोता रहता है। दर्द बिखेरता चलता हूँ, लेकिन जितनी करुणा मैं नेत्रों से या अपनी कलम से बिखेर पाता हूँ उससे अधिक वह फिर मुझे घेर लिया करती है।

एक बार मेरे कुछ मित्रों ने प्रश्न किया था कि शादी के जुलूस को देख कर अलग-अलग लोगों में क्या भाव आते हैं? इसपर कई प्रकार के उत्तर मिले। किसी ने कहा कि 'मैं तो सोचता हूँ कि यदि दूल्हे को हटा कर खुद बैठ जाऊँ, तो मुझे फिर एक बार एक नई पत्नी मिलेगी।' मुझसे भी वही प्रश्न पूछा गया। मैं नहीं चाहता था कि ऐसे विषय के प्रश्न का उत्तर दूँ, जिससे मेरे जीवन का कोई खास सम्बन्ध न रहा हो। वैसे विवाह नहीं किया लेकिन मँड़वे में अवश्य गया था, खुशी से गया था। पति-पत्नी को आशीर्वाद देकर लौटा था, कि दोनों का जीवन सुखी रहे। दोनों एक दूसरे को प्यार करें और दोनों का दाम्पत्य-जीवन सुखी रहे।

हो सकता है कि मुझे भी शादी-शुदा लोगों के सुख से कभी-कभी ईर्ष्या हुई हो, लेकिन उनसे मुझे किसी भी प्रकार का द्वेष न

था। हाँ मुझे एक बात का स्मरण हो आया जिसका मैं यहाँ उल्लेख अवश्य करूँगा। मेरे एक दोस्त थे रामरतन जी, अख-बार के दफ्तर में मेरे जाने के अनेक वर्षों बाद उनकी नियुक्ति हुई थी। देखने-सुनने में आदमी बिलकुल निर्विकार से लगते थे, सज्जन स्वभाव के थे। मानवता आदि का उनमें काफी उबाल था। प्रगतिशील थे, समाजवादी आन्दोलन के बड़े समर्थक भी थे। लेकिन बाद में मुझे पता चला कि उन्होंने अपनी पहली पत्नी का त्याग कर दिया है। मैंने उनसे तो कभी कुछ पूछा नहीं, लेकिन कभी-कदाचित जब उनके गाँव या जवार से कोई आता तो वे उन लोगों से मुझको अवश्य मिलाते, उनसे पता चलता कि पहली पत्नी जहाँ की तहाँ गाँव में ही रहती है।

शहर में अपने साथ वे अपनी दूसरी पत्नी को रखते थे। संभ-वतः वह पहली पत्नी से अधिक पढ़ी-लिखी तथा उनके हृदय के भावों को समझ और परख सकती थी। मैं दो एक बार उनकी इस दूसरी पत्नी से मिला भी था। उसका स्वभाव सरल था, उसके होंठों पर सदा हँसी की तरलता छायी रहती थी, सुन्दर भी थी, लेकिन मुझे वह कतई पसन्द न थी। क्योंकि मुझे लगता था कि उसकी हँसी, उसका सब सौन्दर्य किसी अनपढ़ अनबोलती दिहात की लड़की की लाश पर टिका हो। धीरे-धीरे मुझे रामरतन से भी दूरी बनानी पड़ी।

मैंने सुना था कि अपनी पहली पत्नी को इन्होंने पढ़ाई-लिखाई खतम करने के बाद ही छोड़ दिया, यह कह कर कि 'मैंने तो अपनी शादी तब की थी जब मैं अनजान था, मेरे परिवार वाले ही उसके जिम्मेदार हैं।' इन तथ्यों को सुनकर मुझे हैरत होती। मैं एक अनजाने गम और दर्द की लहरों के थपेड़ों में डूबने लगता। मेरा मन दिहात में पली उस परित्यक्ता अनपढ़ नारी के पास पहुँच जाया करता था और उसे मैं बहुत दूर बैठा सान्त्वना-सा दिया करता था।

ओह! मैं कहाँ बहक गया? आइये चलिये अब घर लौटा जाय। देखिये न तारों की चमक फीकी पड़ने लगी है, मेरा मन भी अब कुछ तिक्त-सा हो रहा है। भीतर की कड़ुवाहट कुछ अधिक उभर रही है। क्या सूर्योदय तक आप यहीं टहलते रहना चाहते हैं? अच्छा तो सूर्योदय देखे आपको जमाना गुजर गया है?

आप अभी सावित्री के और मेरे सम्बन्धों के अन्त को जानना चाहते हैं? मित्र, इस समय मैं जो इधर-उधर की बातें कर रहा था, वह इसीलिए ताकि मुझे जीवन की उन दुखती रगों को कुरेदना न पड़े। गंगा के जल पर खिंची हुई वह जो गहरी लाल रेखायें चमक रही हैं, वे लाल रेखायें आप समझ ही गये होंगे कि मणिकर्णिका घाट से जलते हुए शवों से उठी हुई लौ की रेखायें हैं। बस मरने के बाद भी मनुष्य की कहीं छाया पड़ती होगी तो नदियों के तट पर। ओफ! आप इसका मतलब पूछ रहे हैं? मतलब यही है कि इसी शहर में मैंने उसे इस नदी-तट तक पहुँचाया है।

× × ×

वैसे मैंने उसे पत्रों का लिखना उस समय बन्द-सा कर दिया था। जब मैंने उसके कई पत्रों का एक बार भी उत्तर नहीं दिया तो उसके औपचारिक पत्रों का भी मेरे पास आना बन्द हो गया। कई महीने बीत गये, तब-तक सच कहा जाय तो मैं उसके पत्रों के लिए बेचैन-सा हो गया। मैं सोचता कि 'अब तक सावित्री को कोई संतान अवश्य हो गयी होगी?'

उस दिन जब मैं आफिस पहुँचा तो उसके पिता और पति को अपनी प्रतीक्षा करते पाया। उनके चेहरे पर घबराहट थी, उनके बालों में बिखराव था। मुझे पता चला कि सावित्री काफी बीमार है और उसे यहीं के अस्पताल में भर्ती करा दिया गया है।

अस्पताल की राह में उन लोगों से ज्ञात हुआ कि जिसे वे बच्चा समझ रहे थे वह बच्चा न होकर मांस का गुल्म था। एक वर्ष बीत जाने के बाद उसे डाक्टर को दिखाने पर यह ज्ञात हुआ।

अस्पताल पहुँचा। सावित्री को देख कर लगा जैसे अब वह नहीं बचेगी। अस्पताल के जिस बेड पर वह पड़ी हुई थी, वह द्वार के सामने पड़ता था। मुझे देख कर उसने दूसरी ओर मुँह घुमा लिया। मैं सोचने लगा कि 'कितने विश्वास के साथ सावित्री ने मुझे पत्र लिखे थे, उस समय उसके मन में कैसे भाव रहे होंगे ? भविष्य के प्रति कितना विश्वास, कितनी ऊँची-ऊँची उमंगें उसमें रही होंगी ? आज वे धराशायी हो चुकी हैं।' सावित्री के सौन्दर्य में भी बड़ा फर्क आ गया था, लगता था जैसे उसके सौन्दर्य की धरती पर बड़ी-बड़ी खाइयाँ खुद गयी हों। जीवन के बसन्त पर अयाचित तुषारपात से उसकी निष्कलुष आँखें धँस-सी गयी थीं, लेकिन उनकी चमक अब भी वैसी ही थी जैसी मैंने पहली बार देखा था। यदि उसके शरीर में कोई चीज बची थी, तो वह थी उसकी आँखों की चमक !

मैंने जीवन में पहली बार अस्पताल का भीतरी भाग देखा था। मेरा कोई खासा परिवार तो था नहीं कि अगर कोई बीमार पड़ता तो उसकी दवा के लिए मुझे अस्पताल जाना होता। मुझे लगा कि अस्पताल में मेरी तबियत बिलकुल घुटने लगी है। वहां जाने पर ऐसा ही लगता जैसे संसार का कोई भी व्यक्ति स्वस्थ है ही नहीं। अस्पताल की शामों का जवाब नहीं था ! मैंने तब-तक केवल अपने दुःख-दर्द और गम को देखा था, मैंने मात्र अपने मन की कराह सुनी थी। हां मैं तो कुछ ऐसी जिन्दगी जी रहा था कि खुद कभी बीमार पड़ता तो अस्पताल के बाहरी कक्ष तक ही रह जाता था। मैंने शीशियों की दवा और मामूली पट्टियों से अधिक कुछ नहीं देखा था। लेकिन इस बार मैंने आदमी की चीख-पुकार सुनी, उसकी सच्ची कराह सुनी, उसका सच्चा दर्द देखा।

उन दिनों मैं कहीं भी घूमने न जा पाता, प्रायः घर लौटने पर सावित्री ही मेरे मन में घूमा करती। सावित्री के जीवन का वह विश्वास मुझे काटता रहता जिसको वह किसी भी मूल्य पर सँजोये हुए थी। सारी उम्र हम लोगों ने एक दूसरे को याद करते काट दी थी। सावित्री के जीवन में सुख की एक थाती आने वाली थी, जो नया जीवन न बनकर एक मांस-पिण्ड बन गयी थी। मुझे लगता जैसे मेरे जीवन का जो भी सहारा था, उससे भी अब मैं अलग होने वाला हूँ, वह सहारा भी मुझसे छीना जाने वाला है। रात में प्रायः नींद नहीं लग पाती थी, दिन में न कुछ पढ़ पाता था, न लिख पाता था। खबरों को जानने के लिए केवल अखबार पढ़ लिया करता था।

मुझे ऐसा लगता जैसे मेरा जीवन स्वयं हिम मण्डित चट्टानों में दब गया हो, जिसमें कोई ऐसा जीव हो, जो सर्वदा जमा रहे और जिन्दगी को मात्र जिन्दा रहने का आभास मिलता रहे। जड़ता इस कदर बढ़ गयी थी कि न खुलकर रो पाता था, न खुलकर हँस पाता था; लगता था सारा जीवन व्यर्थ हो गया है। जैसे बनियाँ अपनी बही खोल कर दिन भर का हिसाब मिलाता है, वैसे जब मैं अपने जीवन का हिसाब मिलाता तो लगता यह जीवन पूरा का पूरा रीता हुआ है, व्यर्थ है। रातों में मेरे सामने पूरा का पूरा अतीत मूर्त हो जाया करता था, अतीत के वनों में भटकते हुए यात्री की तरह मैं सन्तोष का एक पड़ाव ढूँढ़ता, लेकिन वह मुझे बिलकुल न मिलता। मैं उस अतीत के बियाबान में भटकता ही रहता।

सावित्री अस्पताल में थी, लेकिन रातों में लगता उसकी एक डूबती हुई साँस मुझे सुनाई पड़ती है। गो-धूलि में जैसे धूल उड़ती है और लगता है कि दिन अपनी अन्तिम और आखीरी साँसें ले रहा

हो, वैसे ही सावित्री की डूबती हुई साँस हर रात मेरे मन पर छा जाती और एक अँधेरी प्रकाश-विहीन, घोर अंधकार से भरी हुई रात मुझे घेर लेती थी। लगता था कि मुझे भी अब जीने की कोई आशा नहीं है। जैसे पुराने मकानों को या खंडहरों को तोड़-तोड़ कर गिराया जाता है, वैसे ही मुझे भी लगा कि कोई मेरे भीतर कुछ हथौड़ों से तोड़ रहा हो, मुझे चोट के धक्के पर धक्के लगते और लगता कि मैं टूटता नहीं हूँ, भीतर ही भीतर पिसता रहता हूँ, ऐसा लगता कि कोई ऐसा गिलगिला तत्व है जो केवल कुचलता रहता है। दिल पर मनों पत्थरों का बोझ-सा लदा रहता, जिनसे मैं बुरी तरह अपने को दबा हुआ महसूस करता था। उम्मीद यह भी थी कि यह बोझ बढ़ेगा, घटेगा नही ! वैसे बोझ तो मेरे दिल पर कभी भी कम न था, लेकिन उन दिनों उसका वजन काफी बढ़ गया था।

गुलाब के कुछ फूल मैं प्रतिदिन सावित्री के पास ले जाया करता था। उस दिन फूलों को लेकर जब उसके पास पहुँचा तो उसने मुस्करा कर उन्हें मुट्ठी में कुछ देर तक दबाये रखा, इसके बाद हाथ टेढ़ा करके उन्हें तकिये के नीचे रख दिया। उस दिन उसने अपनी धँसी हुई आँखो से बड़े गौर से मेरे चेहरे की ओर देखा और तनिक काँपते हुये क्षीण स्वरों में बोली, 'इतनी चिन्ता क्यों कर रहे हो ? मैं ठीक हो जाऊँगी, अपने को सँभाल कर नहीं रखोगे तो मेरी सेवा कैसे कर सकोगे ? और यह पेट के अन्दर का धोखा ! इसे तो डाक्टर काट कर निकाल ही देगा !'' उसने एक लम्बी साँस ली। लगा जैसे पेट के अन्दर पलने वाले उस रोग के माँस-पिंड के प्रति भी उसको मोह हो और उसका काट कर निकाला जाना भी उसे अखर रहा हो।

एक दर्द की पीड़ा से उसके मुख से एक आह निकल गई,

उसकी आँखें मुँद गयीं और वह बेड पर छटपटाने सी लगी। उसकी बेचैनी देखकर नर्स डाक्टर को बुला लाई, डाक्टर ने निरीक्षण करने के बाद कहा कि आपरेशन आज ही होगा और उन्होंने इन्जेक्शन से थोड़ा खून उसके शरीर से निकाल लिया।

मैं यह सारी क्रिया मौन होकर देखता रहा। कुछ देर बाद पता लगा कि डाक्टर ने खून खरीदने के लिए पुरजा बनाया है। कुछ देर की दौड़-धूप के बाद खून भी खरीद लिया गया। मैं बाहर निकल आया, अस्पताल के सर्जरी वार्ड के सामने नर्सों की दौड़-धूप बढ़ गई, बन्द वार्ड में सामान इधर-उधर हटाने-बढ़ाने से एक झनकार सी उठती थी, जिससे दिल काँप-सा उठता था। कीटाणु-निरोधक दवाओं की गन्ध चारों ओर फैली हुई थी। जलते हुए स्टोव की आवाज, जिस पर सम्भवतः पानी खौल रहा था, किसी रेलगाड़ी के हाँफते और फालतू भाफ फेंकते इन्जन की आवाज की तरह सुनाई पड़ती थी।

सावित्री के स्ट्रेचर की गाड़ी मेरे पास से लुढ़कती हुई आपरेशन रूम की ओर ले जायी गई, जिस पर रक्खा हुआ उसका शरीर हिल सा रहा था। आपरेशन-रूम बन्द हो गया और हम बाहर खड़े प्रतीक्षा करते रहे। मेरे दिल की धड़कन इतनी बढ़ गई थी, कि लगता था कि दिल बैठ जायगा। खड़े-खड़े पाँव थर्राने से लगे तो मैं गैलरी में पड़ी एक बेंच पर बैठ गया। समय जैसे थम सा गया था, घड़ी की सूई ने जैसे आगे बढ़ना बन्द कर दिया हो।

कुछ देर बाद स्ट्रेचर की गाड़ी बाहर आयी। स्ट्रेचर के साथ लगे एक स्टैंड पर कोई द्रव भरा एक बोतल उलट कर लटकाया हुआ था, जिसमें लगी रबड़ की नली सावित्री की बाँह में घुसी हुई थी, दूसरी वैसी ही नली लगी हुई एक बोतल एक नर्स के हाथ में थी, जिसे पकड़े वह स्ट्रेचर के साथ-साथ चल रही थी।

मैं यह दृश्य देख नहीं सका और अस्पताल के बाहर निकल आया। बाहर आकर चाय आदि पी लेने के बाद थोड़ा स्वस्थ हुआ और फिर अस्पताल के भीतर पहुँचा। पर उस समय मैं क्या कोई भी दूसरा व्यक्ति सावित्री के बेड के पास नहीं जा सकता था।

प्रश्न उठा, उस मांस-पिंड के हटाने का? और वह बोझ शहर में रहने वाला व्यक्ति होने के कारण और फिर सावित्री का बहुत नजदीकी रिश्तेदार न होने के कारण मेरे ऊपर पड़ा। यदि देखा जाय तो मैं सावित्री का कोई भी नहीं था, आपरेशन खतम हो गया था, उसके अपने उसकी व्यवस्था कर लेंगे; मुझे तो वह कटा मांस-पिंड! वह रोग! अस्पताल से हटा कर गंगा के जल में या कहीं अन्यत्र फेंकना था।

सावित्री ने अपने पिछले पत्र में लिखा था कि उसका बेटा मेरी आकृति का होगा। मित्र! मैंने उस मांस-पिंड को देखा था। उसमें कोई धड़कन नहीं थी, कोई रूप नहीं था, किसी जीव की आकृति से उसका रूप नहीं मिलता था। सावित्री का वह लड़का! मेरा वह प्रति रूप! वह पिंड! मांस का ठोस लोथड़ा मात्र था।

कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि क्या मैं भी स्पदन और धड़कन-विहीन मांस का पिंड तो नहीं बनने जा रहा हूँ? एक बार किसी गोष्टी में आपने मेरे बारे में कहा था कि मेरी रचनाओं में एक वजन है, एक बिम्ब है। जानते हैं? उस समय मैं उसी मांस-पिंड के बारे में सोचने लगा था। उसमें भी वजन था, बिम्ब था, वह मेरा प्रतिरूप था।

क्या कहा, मैं अपने को सँभालूँ? मैं सँभल चुका हूँ मित्र! मैं जीवित प्राणी हूँ, मुझ में प्राण है और इच्छा भी है कि हर ठोस पिंड को आकृति दूँ, उसमें जीवन की धड़कन भरूँ।

हाँ तो दूसरे दिन सुबह मैं फिर उसके पास गया। वह होश में

आ चुकी थी। वही क्रम, हाथ मेरी ओर बढ़े, मुट्ठी खुली। मैंने दो गुलाब के लाल सुर्ख फूल उसकी शुष्क निर्जीव हथेलियों पर रख दिये। मुट्ठी बँधी, लौटी, फिर वे फूल तकिये के नीचे रख दिये गये। उस दिन उसके चेहरे पर बड़ी शांति दीख रही थी। लगता उसके चेहरे पर किसी आस्था की एक और चमक आ गयी हो। उसने हाथों से मुझे बैठने के लिये इशारा किया।

मुझे स्मरण आ रहा है कि मृत्यु के पूर्व उस दिन उसने मुझसे पूछा था कि, 'इन फूलों का क्या होगा?' मैंने कहा था 'इन्हें जब तुम स्वस्थ-हो जाओगी, तो साथ लेती जाना।' लेकिन मेरे इस कथन पर लगता है उसे विश्वास नहीं हुआ। उसके होंठ धीरे से काँपे। उसने इतना ही कहा, 'बचने की तो कोई उम्मीद है नहीं, लेकिन मेरे तन के फूल में इन फूलों को भी शामिल कर देना।'

मैं बैठ गया, उसमें न बात करने की क्षमता थी न देख सकने की। वह बड़े कष्ट से आँखें खोलती. मुझे ऊपर से नीचे तक देखती, आँखें नम हो जाती और बंद भी। देर तक यही क्रम चलता रहा। उसे जिन दवाओं को देना था उन्हें दे दिया, उसके बाद उसकी आँखें मुँदी तो खुली नहीं। डाक्टरों की भीड़ लग गयी, उन लोगों ने आश्वस्त किया कि अभी जीवन है, देखिये क्या होता है?

अस्पतालों में रोगियों से मिलने का भी एक वक्त होता है। मेरे लिये वह वक्त बीत गया, मै लौट आया।

× × ×

दूसरे दिन जब मैं अपने चंद गुलाब के फूलों को लेकर अस्पताल में पहुँचा तो मुझे पता चला कि सावित्री अब केवल घण्टे दो घण्टे की मेहमान है। डाक्टरों और नर्सों की उपस्थित ने मुझे

पहिले ही चौंकाया था, उसके पतिदेव ने मुझे बताया कि कल से तो इसने आँखें खोली ही नहीं। खैर मैंने अपने गुलाब के फूलों को अपनी जेब में ही रहने दिया।

उसकी नाड़ी बहुत धीमी चल रही थी, मेरे जाने के लगभग घण्टे भर बाद उसने अपनी साँसें तोड़ दीं। मैं निष्प्रभ देखता रहा, मैं न हिला न डुला। मेरी आँखें सम्भवतः नम नहीं हुईं, न उनमें लगता है कोई भाव ही आये। सावित्री के स्वजन, उसके पिता और उसके पति के घर के लोग, मेरे गाँव के भी कुछ लोग, सभी वहाँ मौजूद थे। उनके बीच घिरा मैं अपने को एक अजीब-सी स्थिति में पाता था।

सावित्री जब उतारी गयी तो उसके बिस्तर को मैंने साफ किया। मुझे पता था कि मेरे दिये हुए सभी गुलाब के फूल उसके तकिया के नीचे सुरक्षित थे। उसने अपनी इच्छा यही जाहिर की थी कि इन फूलों को भी मेरे फूलों में मिला देना, लेकिन मैं उसकी इस अन्तिम इच्छा को पूरा करने के लिए कतई तैयार न था। मैंने धीरे से लोगों की आँखें बचा कर उन फूलों को अपनी जेब के हवाले किया। वे गुलाब के फूल सूखे हुए थे, उनकी पंखुड़ियाँ निर्जीव-सी बिखरी हुई थीं, लेकिन मेरा उनसे कुछ मानसिक लगाव-सा था, इसलिए उन्हें मैं किसी भी हालत में अलग नहीं करना चाहता था।

मैं उसकी शादी में भी सम्मिलित था, उसकी शव-यात्रा में भी सम्मिलित हुआ। इसी गंगा के तट पर मैंने उसके शरीर को राख होते देखा। उसका सौंदर्य, उसकी आँखों, सभी के अस्तित्व को मैंने राख में मिलते देखा। जिस तन ने किसीके विश्वास की रक्षा की वह जल गया। तन-हीन मन का अस्तित्व गुलाब की सूखी पंखुरियों से भी कम है। उस समय उसके कफन में लिपटे शव को देख कर मेरे मनमें कैसे-कैसे भाव उठ रहे थे, कहा नहीं जा सकता? कभी उसके पति

पर क्रोध उमड़ता, कभी उसके पिता पर, कभी अपने पर। शरीर का अन्तिम हश्र यही है, इसे जानते हुए भी मनुष्य अपने तन के बारे में बड़ी गलतफहमी रखता है। उसे अनेक बंधनो, धर्मों और रूढ़ियों के सूत्रों में बाँध कर रखता है। पता नहीं मेरा ख्याल सत्य था, या सावित्री सत्य थी? आज तक इस निष्कर्ष पर मैं बिलकुल नहीं पहुँच सका, लेकिन जरूर कहीं कुछ गड़बड़ी है?

पता नही परलोक होता है या नही? लेकिन हमारे यहाँ जितना इस लोक पर बल नहीं दिया जाता, उतना परलोक पर दिया जाता है। हम जीवन के सारे क्षेत्रों में परलोक पर आस्था रखते हैं। मन सदा जलता रहता है, पर तन एक बार जलता है और अस्तित्व समाप्त हो जाता है। और सावित्री का शव जलाकर लौट आया।

सावित्री का कोई चिन्ह पृथ्वी पर बचा नहीं रह गया था। घर लौटा कुर्ता बदला, देखा तो जेबों में मुर्झाये गुलाब की पंखड़ियाँ थीं। बहरहाल वही उसके स्पर्श से पायी गयी कुछ अंतिम स्मृति की प्रतीक थीं। उन फूलों को मैंने अपनी पुस्तकों के बीच ही सुरक्षित रख दिया है। इन दिनों अवसाद के क्षणों में उन मुर्झायी पंखुरियों से थोड़ा जीवन पा लेता हूँ, उन्हीं से कुछ मौन संलाप करके संतोष कर लेता हूँ। वे फूल जैसे किसी अमूल्य निधि की तरह मेरे पास सुरक्षित हैं।

× × ×

सावित्री की मृत्यु के बाद कई सप्ताह तक तो मैं बिलकुल टहलने भी नहीं निकला। अपने घर में ही बंद रहा करता था। बाहर की दुनियाँ में क्या हो रहा है? इससे मुझे जरा भी ताल्लुक नहीं रह गया था। उसके बाद फिर यही गंगातट मेरे साथ था। मैं अनाथों की तरह टहलता था, एकांत में घूमता था और आत्म-

शांति की तलाश करता था और सचमुच यह गंगा भी 'अनाथ : स्नेहाद्रामि विगलित गतिः पुण्य गतिदाम' तो है ही।

मुझे यहाँ आने पर सर्वदा ऐसा महसूस होता है कि यद्यपि बाहर के इस विशाल संसार में मेरा कोई नहीं है, पर गंगा-तट है और वह ही मेरा है। मैं बाहर की सारी अवहेलना, सारा अपमान यहाँ शांत तट पर बैठकर भूल जाता हूँ। यह नदी-तट लगता है मेरे सामने एक निर्मल चित्त का आत्मीय हो, जिसकी शरण में मुझे सर्वदा से शांति मिलती है। यहाँ नदी तट पर बैठकर लहरों के व्यापक संगीत को सुनने में मुझे बाहर के किसी भी संगीत गायन-वादन से अधिक तृप्ति मिलती रही है। इस तट पर आकर मुझे लगता है जैसे मैं अपने किसी स्वजन या आत्मीय के पास बैठा हूँ, जिसके पास नाना रूप, नाना रंग हैं, जो सदा अपने परिवेशों को बदलती है। गहन अंधकार या चाँदनी, सूर्योदय या सूर्यास्त सभी इसके जल पर अपना-अपना असर छोड़ते हैं। मुझे तो इसका काफी शौक है कि मैं अलग-अलग स्थितियों में इस नदी पर इन रंगों के असर को देखूँ।

वैसे अनेक अवसरों पर अनेक रूपों में मैंने यहाँ इस तट के रंगों को बदलते देखा है। तट पर बसने वाले कबूतरों के परों की फड़फड़ाहट या दूर यात्रियों को ले जाने वाली नावों के स्वर ही मुझे चौंकाते हैं। कभी तो मैं इस प्रकार अपने अतीत में खो जाता हूँ, कि इनका भी मुझपर कोई असर नहीं पड़ता।

आप क्या पूछ रहे हैं? और श्यामा? श्यामा का साथ मैंने उन्हीं दिनों छोड़ दिया था। मैंने यह अनुभव किया कि उसका साथ मुझसे संभवतः न निभाया जा सके। श्यामा जैसी स्त्रियों के लिए अब मेरे मन के किसी कोने में कोई भाव नहीं है। हाँ अपनी दुर्बलताओं का जब कभी ख्याल आता है तो श्यामा या कुछ अन्य

नारियों का मखौल सा उड़ाता रूप मेरी आँखों के सामने आ जाता है। इधर तो उसका मुझे कोई पता नहीं, उसके पतिदेव भी मुझे कहीं नहीं दीखते।

देखिये, फिर मैंने कभी औरत को खरीदने की कोशिश नहीं की। क्योंकि खरीदने के बाद भी मेरे मन को कम कष्ट नहीं हुआ। सुना है औरतें आत्म-समर्पण करती हैं, किसी के व्यक्तित्व के पीछे वे खो जाती हैं। मेरे जीवन में तो वैसी नारी के दर्शन तक नहीं हुए, और अब तो किसी की इच्छा भी नहीं है। इसे आप चाहें तो मन का बुढ़ापा कह सकते हैं, लेकिन मैं उसे नहीं मानता। मनोविज्ञानिकों द्वारा मन के अनेक विश्लेषणों के पढ़ने के बाद भी मुझे लगता है कि उस मन की भावना को मोड़कर किसी बड़े उद्देश के साथ सम्बन्धित किया जा सकता है।

हाँ किसी और भी औरत से कहीं यदि परिचय होता भी है, तो मैं उससे अपनी दूरी बनाये रखना चाहता हूँ। अपनी पिछली असफलतायें और लाचारियाँ मेरे जीवन में कम नहीं हैं, इसीलिए किसी नयी मानसिक उथल-पुथल को झेलने के लिए मैं बिलकुल तैयार नहीं हूँ। किसी भी औरत, से अगर मुलाकात होती है तब शिष्टता का निर्वाह करता हूँ। सच यह है कि न औरत मेरे लिए बनी है, न मैं उसके लिये। विश्व का सारा सौंदर्य यदि वही है तो मेरे लिए नहीं है। हाँ प्रकृति का सारा सौंदर्य मेरे लिये है, मैं नंगी प्रकृति को निर्निमेष घण्टो देखा करता हूँ। उसके व्यापक तथा विशाल सौंदर्य को अपने को समर्पित कर, उसमें खोकर, मुझे शान्ति मिल जाया करती है। यह जो रात में भी वृक्षों की गहन काली छाया दीख रही है। यह भी एक अजीब भाव का संकेत है। इसका भी एक विशेष अर्थ है। वह क्या है ? यह तो मैंने अभी तक जान नहीं पाया है, लेकिन

उसमें संकेत अवश्य हैं, जो आकर्षित करते हैं। अब तो मैं इन्हीं, अर्थों की तलाश में भटकता रहता हूँ।

मेरे जीवन का लम्बा इतिहास समाप्त हो चुका है। कुछ वर्षों के ही पृष्ठ सादे हैं, वे भी जल्दी ही भर जायेंगे। लेकिन मेरे जीवन की इतनी निरर्थकता न जाने कब औरों के लिए सार्थकता का स्वरूप ले सकेगी ?

कुछ दिनों पूर्व मेरा एक सार्वजनिक सम्मान भी हुआ था, उसके संयोजकों में से एक आप भी तो थे। मेरी आँखें अनायास उस दिन एक जमाने बाद नम हो गयी थीं। मुझे ऐसा लगता था जैसे इस भीड़ में मेरा अपना सगा-स्वजन कोई है ही नहीं। ऊपरी तथा बनावटी आत्मीयता के बोझ से लगता था मैं घुटा जा रहा होऊँ। उस दिन तो मैं बिलकुल बोल ही नहीं पाया। लोगों ने मेरी तारीफें की थीं। लोगों ने कहा 'कि इनकी भाषा तथा इनके भाव हृदय के सूक्ष्म कोनों को भी अभिव्यक्ति देते हैं।' 'उसमें एक बिम्ब है, एक लय है' यह आपने भी कहा था ? हाँ भाई होगा ? अभी उसे रूप देना है ! जीवन देना है !

आइये लौटा जाय, देखिये पूरब से ऐरावत अपने सूँड़ में खिला कमल लेकर अभी उठेगा, क्योंकि क्षितिज पर एक हलकी लाली उठ रही है। आज आप उगते हुए सूर्य को देख सकेंगे, साथ ही लहरों से उठने वाले उस संगीत को भी सुन सकेंगे जो सूरज की किरणों के लहरें पर पड़ने से उठता है। मुझे तो कभी-कभी प्रातः के सूर्य की किरणें जब लहरों पर पड़ती हैं तो लगता है जैसे असंख्य सितारों के तारों पर असंख्य गलियाँ एक साथ थिरक उठी हों और मैं इन्हीं लहरों से उठते हुए एक अद्भुत संगीत को सुनने लग जाता हूँ।

आइये लौटा जाय। अब शहर के कोलाहलमय जीवन में खो जाने के अलावे कोई रास्ता नहीं है।

प्रचारक पाकेट बुक्स सूची

१. पवित्र पापी (पंजाबी)
२. एक सड़क : सत्तावन गलियाँ
३. बिखरे काँटे
४. वनमाला
५. समर्पण
६. कादम्बरी
७. भाग्यवती
८. लाल पंजा
९. काले कारनामे
१०. मैंडेलीन
११. पंकज
१२. गवर्नेस
१३. नारी : एक पहेली
१४. कस्तूरी
१५. काठ के ताबूत और जिन्दा लाशें
१६. इकबाल की शायरी
१७. क्लीयोपेट्रा
१८. नया-स्वर
१९. काम-मनोविज्ञान तथा यौन-व्याधियाँ
२०. व्यंजन-वीथिका (पाक-शास्त्र)
२१. अशान्त
२२. अन्तरिक्ष के मेहमान
२३. प्रणय
२४. सपनों की जंजीरें
२५. बेगम और गुलाम
२६. हिना के हाथ
२७. दशकुमार चरित
२८. द्वा-सुपर्णा
२९. सुभाषित
३०. जौक की शायरी
३१. रूपी
३२. पाषाण पंख (पंजाबी)
३३. इन्द्रजाल
३४. कौन जानता था
३५. वन-पांखी
३६. जूही (मराठी)
३७. गोरी हो गोरी ! (उर्दू)
३८. चमत्कारिक अनुभूतियाँ
३९. पीड़ारहित प्रसव
४०. बेकराँ (शायरी)
४१. माँ (असमिया)
४२. कुब्जा-सुन्दरी
४४. मरने के बाद
४५. एक आवारे की डायरी
४६. राजसिंह (बँगला)
४७. तेरे सुर मेरे गीत
४९. भाग्य और नवग्रह
५०. स्वयं डाक्टर बनें
५१. चीन को चेतावनी

पाँचवीं किस्त की नयी पुस्तकें

४३. मोरक्षाल
४८. दाग़ की शायरी
५२. साँचा
५३. सपने बिकाऊ हैं
५४. तिब्बत का रहस्य
५५. युद्ध और प्रेम (मराठी)
५६. नदी तट से
५७. बन्देमातरम् (बंगला)